श्री भवानीशङ्करत्रिवेदविरचितम्

मोक्षमूलरवैदुष्यम्

नाटकम्

मान्याः !

जर्मनांग्लफ्रान्सरूसादियूरोपीयेषु देशेषु संस्कृतस्य प्रवेशानन्तरमेतादृशाः सुरभारतीसमुपासका भारतभक्तो विद्वांसस्तत्र प्रादुरभवन् यैः स्वजीवनं संस्कृतस्यं प्रचारणाय, सभाष्यान् वेदान् वेदाङ्गानि च सुसम्पाद्य प्रकाशनायार्पितम्, तेषामस्या अनुष्ठानपरम्परायाः परिचायकमथ च—

ब्रोक हाउसः—

सम्प्रत्यमरभारत्या दिव्यं पीतं मया मधु।
आप्नुवन्ति यदास्वाद्य निर्जरत्वं नरा इह॥

मोक्षमूलरः—

उदाराः कर्मशूराश्च वाक्शूरा नहि केवलम् ।
विद्यन्ते भारतीया हि ज्ञातं सर्वैर्जनैरिह ॥

अथ च—

वाराणस्यां निवासश्च गङ्गाम्भसि निमज्जनम्।
वेदवेदान्तपाठश्च प्रियमेतत् त्रयं मम॥

सदृशैर्यथाप्रसङ्गोक्तैः सूक्ति-प्रचयैः समुल्लसितं स्वशिष्यान् स्वजीवनं वेदाय समर्पयितुं प्रेरयद्भिः ऋषिकल्पैर्बर्नूफसदृशैर्वेदानुरागिभिः परिवृद्धगरिमाणं नानाविधैः हास्यप्रसङ्गैर्द्विगुणीकृतरामणीयकमिदमभिनवमैतिहासिकं सरसं नाटकं पाठं-पाठं, श्रावं-श्रावं, दर्शं दर्शञ्च नूनं तत्रभवतां शिरः संस्कृतगौरवेण समुन्नतं स्वान्तञ्च भारतप्रेम्णाप्लावितं भविष्यति ।
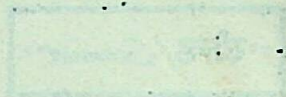
मोक्षमूलरवैदुष्यम्

सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम्

मोक्षमूलरवैदुष्यम्

(भाषानुवादसहितं टिप्पण्यादिभिः परिष्कृतं भूमिकया च सनाथितम् ऐतिहासिकं नाटकम्)

प्रणेता

श्री भवानी शङ्कर त्रिवेदी

शास्त्री, एम. ए., पी-एच. डी.

आर्य-भारती

आर्य-संस्कृत-सजातीय-भारोपीयाभाषा-संस्थानम्

जी-१८, दिलशाद कालोनी

दिल्ली-११००३२

MOKSHAMUELLER-VAIDUSHYAM

(A Historical Sanskrit Play with Hindi version Prefacc and Notes)

Sh. BHAWANI SHANKER TRIVEDI
Shastri, M. A., Ph. D.

Arya Bharati
Institute of Aryan-Sanskrit & Cognate
Indo-Europian-Languages
G-18, Dilshad Colony
DELHI-110032

मोक्षमूलराभिलषितायां

वाराणस्यां

सम्पद्यमाने

पञ्चम-विश्व-संस्कृत-सम्मेलने

समवेतानां

समग्रविश्वस्य सुरभारतीसमुपासकानां

सम्माने

सादरम्

नाटकमेतत् आकाशवाण्या दिल्ली-केन्द्रतः प्रसारितमभूत् ।

तत्र

सहयोगः सौजन्यञ्च

केन्द्र-निदेशक—
श्रील: एम. एस. वत्रा

नाटक-विभाग-कार्यक्रम-सञ्चालक—
श्री सत्यप्रकाश हिंदवाण:

निर्देशिका रेडियोरूपान्तरकर्त्री च—
श्रीमती कमला रत्नम्
विख्याता-विदुषी नाट्य-विशारदा च ।

प्रस्तुतीकरण-सहायक—
श्री गोपाल सक्सेना

प्रमुख कलाकारा: :

सर्वश्री मधुर शास्त्री, बलदेवानन्द सागर:, विश्वनाथ:, धरणीकान्त झा, दिनेश्वर:, सुरेश पन्त:, राधेश्याम शर्मा, शिवकान्त:, सुरेन्द्र शर्मा, रविशंकर दत्त, कु० अनुपमा कुलश्रेष्ठ, कु० रमणदत्ता, कु० रेखा कटारिया ।

आत्म-निवेदनम्

संस्कृतांग्लशर्मण्यफारसीत्यादि—संस्कृत - सजातीय—भारोपीयार्यभाषाणां संस्कृतं केन्द्रीकृत्य १. संस्कृतं यूरोपीया भाषाश्च, २. संस्कृतमीराणीया, भाषाश्च ३. 'Sanskrit The Language of Languages' इति ग्रन्थानां निर्माणे प्रसक्तेनानेन जनेन मोक्षमूलरस्य Lectures on Comparative Phylology सदृशैर्ग्रन्थजातैरधिगतं मार्गदर्शनम् । India : What it can Teach Us इति पुस्तकेनास्य महात्मनोऽपूर्वां भारतभक्ति विज्ञाय तस्य सुगृहीतनामधेयायाः पत्न्याः जार्जिनायाः Life and Letters of Max Mueller इति पुस्तकमपठम् । तत्र च वेदभक्तं नानोपायैर्वेदमहिमानं व्यञ्जयन्तं मोक्षमूलरं स्वजीवनं वेदायार्पयितुञ्च प्रेरयन्तं श्रीवर्नूफं विलोक्य, शिष्यैः परिवृतं कञ्चिदृपिमेव प्रत्यक्षमन्वभवम् । तस्मिन् पुस्तके एतादृशानेवानेकान् प्रसंगान् पाठंपाठं मोक्षमूलरस्य संस्कृतसेवां नाटकरूपेणोपस्थापयितुमुत्केनानेन संस्कृतसेवकेन यथामत्युपनिबद्धमिदं नाटकं सादरं विदुषां करकमलेषु समर्प्यते ।

श्रीमतां पूज्य गुरुवर्याचार्यचरणानाममृतवाग्भवानामाशीर्वादो मह्यमत्रापि प्राप्तः इति मे सौभाग्यम् ।

पुस्तकलेखने चि० रविशर्मा त्रिवेदी (एम. ए. हिन्दी संस्कृत इंग्लिश) तथा च चि० आनन्द शर्मा एम. ए. इति सुतद्वयाभ्यां महत्साहाय्यं कृतम् । प्रकाशने च राजीव प्रिंटर्स इत्येतै तथा च श्री राजेन्द्र तिवारी महाभागैः सुमहान् श्रमो विहितः । प्रूफ-संशोधने च श्री राज वली पाण्डेयेन साहाय्यं कृतम् ।

तदर्थमाशीर्वचांसि धन्यवादं च प्रयच्छामि ।

॥ श्रीरस्तु ॥

शरत् पूर्णिमा,
संवत् २०३८
आर्य-भारती
जी-१८, दिलशाद कालोनी
दिल्ली-११००३२

विदुषामाश्रवस्य
भवानीशङ्करत्रिवेदस्य

विवेकानन्द उवाच——

[स्वामी जी १८९६ के जून मास में प्रो० मेक्समूलर के निमन्त्रण पर उन्हें मिलने लन्दन से आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के परिसर में स्थित उनके आवास पर पधारे थे। उस समय मोक्षमूलर ७३ वर्ष के थे।

मोक्षमूलर के साथ अपनी इस भेंट का विवरण लन्दन से स्वामीजी ने 'ब्रह्म-वादिन' पत्र में प्रकाशनार्थ भेजा था। अंग्रेजी में प्रकाशित मूल लेख के कुछ अंश आगे दिए जा रहे हैं। यहां उसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत है। यह अनुवाद 'अद्वैत आश्रम' कलकत्ता से प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' के नवम खण्ड के पृष्ठ २४८-५१ से साभार उद्धृत है। —नाटककार]

प्रो० मैक्समूलर कितने असाधारण व्यक्ति हैं! मैं कुछ दिन पहले उनसे मिलने गया था।

प्रोफेसर महोदय ने पहले तो यह जानने में रुचि दिखलायी कि किस शक्ति के द्वारा ब्राह्म-समाज के बड़े नेता केशवचन्द्र सेन के जीवन में सहसा महत्त्वपूर्ण परिवर्तन घटित हुए और तभी से वे श्री रामकृष्ण देव के जीवन एवं उपदेशों के प्रशंसक और उत्साही विद्यार्थी हो गये हैं। मैंने कहा, "प्रोफेसर, आजकल सहस्रों लोग श्रीरामकृष्ण की पूजा कर रहे हैं।" प्रोफेसर ने प्रत्युत्तर में कहा, "यदि लोग ऐसे व्यक्ति की पूजा नहीं करेंगे तो और किसकी करेंगे ?"

यह भेंट मेरे लिए एक अद्भुत अनुभव थी। एक सुन्दर उद्यान के बीच उनका वह मनोरम छोटा-सा गृह, सत्तर(७३) वर्ष की आयु होते हुए भी वह स्थिर प्रसन्न मुख, बालकों का सा कोमल ललाट, रजतशुभ्र केश, ऋषि-हृदय के अन्तस्तल में कहीं स्थित गंभीर आध्यात्मिक निधि की अस्तित्वसूचक उनके मुख की प्रत्येक रेखा, उनकी शीलवती पत्नी, विरोध एवं निन्दा पर विजय प्राप्त करके अंततः भारत के प्राचीन ऋषियों के विचारों के प्रति आदर-भाव उत्पन्न करा सकने वाले उनके दीर्घकालीन श्रमसाध्य उत्तेजक जीवन कार्य में हाथ बंटानेवाली उनकी सहधर्मिणी—विटप, पुष्प, नीरवता और स्वच्छ आकाश—ये समस्त सम्मिलित हो मुझे कल्पना में भारत के उस प्राचीन गौरवशाली युग में, ब्रह्मर्षियों और राजर्षियों के, उच्चाशय वानप्रस्थियों तथा अरुन्धती और वशिष्ठादिकों के युग में खींच ले गये।

मैंने उन्हें एक भाषातत्त्वविद् अथवा पण्डित के रूप में नहीं देखा, वरन् मैंने

उन्हें ब्रह्म के साथ नित्य एकरूपता अनुभव करने वाली एक आत्मा और विश्वात्मा के साथ एकात्म होने के निमित्त प्रतिक्षण विस्तीर्ण होते हुए हृदय के रूप में ही देखा। जहां अन्य लोग शुष्क व्योरों की मरुभूमि में स्वयं को खो देते हैं, वहां उन्होंने जीवन का स्रोत ढूंढ निकाला है। निस्सन्देह उनके हृदय के स्पंदनों ने उपनिषदों की लय पकड़ ली है—**तमेवैकं जानथ आत्मानम् अन्या वाचो विमुञ्चथ**—'एक मात्र आत्मा को ही जान लो और सब बातें त्याग दो।'

समग्र जगत् को हिला देनेवाले पण्डित एवं दार्शनिक होने पर भी उनके पाण्डित्य और दर्शन ने उन्हें उच्च से उच्चतर स्तर की ओर ले जाकर आत्म-दर्शन में समर्थ किया है। उनकी अपरा-विद्या वास्तव में उनके परा-विद्या-लाभ में सहायक हुई है। यही है सच्ची विद्या। **विद्या ददाति विनयम्**—'ज्ञान से ही विनय की प्राप्ति होती है।' यदि ज्ञान हमें उस परात्पर के निकट न ले जाय, तो फिर ज्ञान की उपयोगिता ही क्या ?

और फिर उनका भारत के प्रति अनुराग भी कितना है ! मेरा अनुराग यदि उसका शतांश भी होता, तो मैं अपने को धन्य समझता ! असाधारण और प्रखर क्रियाशील प्रतिभा से युक्त यह मनस्वी पचास या उससे भी अधिक वर्ष से भारतीय विचार-राज्य में निवास तथा विचरण कर रहे हैं; और उन्होंने इतनी श्रद्धा एवं हार्दिक प्रेम के साथ संस्कृत साहित्य के अनन्त अरण्य में प्रकाश और छाया के तीक्ष्ण विनिमय का अवलोकन किया है कि अन्त में वह उनके हृदय में ही बैठ गया है एवं उनका सर्वांग ही उसमें रंग गया है।

मैक्समूलर वेदांतियों के भी वेदांती हैं। उन्होंने सचमुच वेदांत की रागिनी की यथार्थ आत्माको समस्वरता और विस्वरता की पूर्ण भूमिका में पहचाना है—उस वेदांत की, जो पृथ्वी के समस्त सम्प्रदायों एवं विचारों को प्रकाशित करने वाला एकमात्र आलोक है और समस्त धर्म जिसके भिन्न-भिन्न रूप मात्र हैं। यह आश्चर्य की बात है कि इस पाश्चात्य ऋषि ने भारतीय विचारगगन में उदित हर एक नए नक्षत्र को परख तथा पहचान कर उसी समय उसकी खूबियां भी बता दीं जब कि भारतीयजन उसके महत्त्व को अभी समझ ही नहीं पाए थे।

इस अनुच्छेद का अनुवाद मूल पाठ के अनुसार किया गया है। 'विवेकानन्द-साहित्य' नामक पुस्तक का अनुवाद नीचे टिप्पणी में दिया गया है।

मैंने उनसे कहा, "आप भारत में कब आ रहे हैं ? भारतवासियों के पूर्वजों की चिन्ताराशि को आपने यथार्थ रूप में लोगों के सामने प्रकट किया है, अतः वहाँ का प्रत्येक हृदय आपका स्वागत करेगा।" वृद्ध ऋषि का मुख चमक उठा,

---

यदि इस पश्चिम के ऋषि ने भारतीय विचार-गगन में किसी नये नक्षत्र के उदित होने से—इसके पहले कि भारतवासी उसका महत्त्व समझ सकें—उसकी ओर आकृष्ट होकर उसकी विशेष पर्यालोचना की हो, तो क्या यह विस्मय की बात है।

उनके नेत्रों में आँसू जैसे भर आए और नम्रता से सिर हिलाकर उन्होंने धीरे-धीरे कहा, "तब तो मैं वापस नहीं आऊँगा; तुम लोगों को मेरा दाह-संस्कार वहीं कर देना होगा।" आगे और अधिक प्रश्न करना मुझे मानव-हृदय के पवित्र रहस्यपूर्ण राज्य में अनधिकार प्रवेश करने की चेष्टा की भाँति प्रतीत हुआ। कौन जाने, कवि ने जो कहा था वह यही हो—

तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वम्
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥

—'वे निश्चय ही, अज्ञात रूप से हृदय में दृढ़-निबद्ध, पूर्व-जन्म की मित्रता की बातें सोच रहे हैं।'

उनका जीवन संसार के लिए एक वरदान रहा है और मेरी प्रार्थना है कि उनके द्वारा अपनी सत्ता की प्रस्तुत भूमिका को परिवर्तित करने के पूर्व यह वरदान अनेक अनेक वर्षों तक चलता रहे।

पात्र-परिचय

पुरुषाः

मोक्षमूलरः (मैक्समूलर, मूलरो वा)—नायकः ।

स्वामिविवेकानन्दः —विश्वविख्यातो महात्मा ।

ब्रोक्हाउसः—लाइपजिग्-विश्वविद्यालस्य संस्कृताचार्यः, मूलरस्य संस्कृताध्यापकः ।

बर्नूफः —पेरिस-विश्वविद्यालयस्य संस्कृताचार्यः, मूलरस्य वेदगुरुः ।

रुडोल्फरॉथः—वर्नूफस्यान्यतमः शिष्यः, शर्मण्यो विख्यातो वेदविद्वान् ।

विल्सनः —ऑक्सफोर्ड-विश्वविद्यालयस्य संस्कृताचार्यः, मूलरस्य परमो हितैषी ।

केशवचन्द्रसेनः —ब्रह्मसमाजस्य विख्यातो नेता ।

स्टर्डी—विवेकानन्दस्य शिष्यः सहयोगी च ।

सूत्रधारः

(छात्राः, रामजी, श्यामजी, शिक्षकः, वैदिकः, पण्डादयोऽन्ये च)

स्त्रियः

जार्जिना— मोक्षमूलरस्य पत्नी

माता— " माता

अग्रजा— " अग्रजा

सुता— " पुत्री

विक्टोरिया— सम्राज्ञी

नटी

(श्रीमती किंग्स्ले, प्रतिहारी अन्याश्च)

THUS SPAKE SWAMI VIVEKANANDA

What an extraordinary man Prof. Max Mueller is!

I paid a visit to him, a few days ago.

The visit was really a revelation to me. That nice little house in its setting of a beautiful garden, the silver-headed sage, with a face calm and benign, and forehead smooth as a child's in spite of seventy winters, and every line in that face speaking of a deep-seated mine of spirituality somewhere behind; that noble wife, the helpmate of his life through his long and arduous task of exciting interest, overriding opposition and contempt, and at last creating a respect for the thoughts of the sages of ancient India—the trees, the flowers, the calmness, and the clear sky—all these sent me back in imagination to the glorious days of ancient India, the days of our Brahmarshis and Rajarshis, the days of the great Vānaprasthas, the days of Arundhatis and Vasishthas.

It was neither the philologist nor the scholar that I saw, but a soul that is every day realising its oneness with the Brahman, a heart that is every moment expanding to reach oneness with the Universal. Where othres lose themselves in the desert of dry details, he has struck the well-spring of life. Indeed his heartbeats have caught the rhythm of the Upanishads *tamevaikam jānatha ātmānam anyā vacho vimuncatha* : "Know the Atman alone and leave off all other talk".

Although a world-moving scholar and philosopher, his learning and philosophy have only led him higher and higher to the realisation of the spirit, his *aparā vidyā* (lower knowledge) has indeed helped him to reach the *parā vidyā* (higher knowledge). This is real learning: *vidyā dadāti vinayam* : "Knowledge gives humility". Of what use is knowledge if it does not show us the way to the Highest ?

And what love he bears towards India, I wish I had a hundredth part of that love for my own motherland! Endowed with an extraordinary, and, at the same time, intensely active

mind, he has lived and moved in the world of Indian thought for fifty years or more, and watched the sharp interchange of light and shade in the interminable forest of Sanskrit literature with deep interest and heartfelt love, till they have all sunk into his very soul and coloured his whole being.

Max Mueller is a Vedantist of Vedantists. He has, indeed, caught the real soul of the melody of the Vedanta, in the midst of all its settings of harmonies and discords—the one light that lightens the sects and creeds of the world, the Vedanta, the one principle of which all religions are only applications.

It is a wonder that this Western sage does study and appreciate every new star in the firmament of Indian thought, before even the Indians realise its magnitude?

"When are you coming to India? Every heart there would welcome one who has done so much to place the thoughts of their ancestors in the true light," I said. The face of the aged sage brightened up—there was almost a tear in his eyes, a gentle nodding of the head, and slowly the words came out: "I would not return then; you would have to cremate me there." Further questions seemed an unwarrantable intrusion into realms wherein are stored the holy secrets of man's heart. Who knows but that it was what the poet has said:

taccetasā smarati nūnamabodhapūrvam
bhāvasthirāṇi jananāntarasauhridani

He remembers with his mind the friendships of former births, firmly rooted in his heart.

His life has been a blessing to the world; and may it be many, many years more, before he changes the present plane of his existence!

From Complete Works of Swami Vivekananda,
Vol IX, Calcutta, 1963

प्रथमः अंकः

ॐ विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि ।
असूयकायानृजवेऽयताय न मा ब्रूया वीर्यवती तथा स्याम् ।।

(मन्त्रस्योत्तरार्धं क्रमशः मन्दी भवति । तत एव
चैतच्छ्लोकत्रयमुद्गच्छति ।)

वागर्थवरदा रम्या वागर्थव्यक्तरूपिणी ।
भारूपा भारती भव्या श्रेयसेऽस्तु सतां सदा ।।१।।

यूरोपीया जना येन राजानश्चाधिकारिणः ।
भारतीयचरित्रेण प्रज्ञया परिचायिताः ।।२।।

सह सायणभाष्येण ऋग्वेदश्च प्रकाशितः ।
मोक्षमूलरभट्टोऽयं विश्वं विजयतेतराम् ।।३।।

(नान्द्यन्ते सूत्रधारो नटी च)

सूत्रधारः —सुप्रभातमार्ये !

नटी – भवतेऽपि सुप्रभातम् । नाट्यविशारद ! किमिदम्पुस्तकम् ? (पुस्तकमवलोक्य) अहोऽद्यत्वे खलु महात्मन आत्मकथानुशील्यते!

सूत्रधारः —सत्यम् । अस्यामात्मकथायां राष्ट्रपित्रा महात्मागान्धिना मेक्समूलरस्यैका कृतिः सविशेषं चर्चिता । पूज्यो बापुरत्र लिखति यन्मेक्समूलरस्य 'भारतमस्मान् किमुपदिशति' India : What it can Teach Us इति पुस्तकमफ्रीकाप्रवासकाले मया सस्पृहं सोल्लासञ्च पठितम् ।

नटी—अथ च—

स्वराज्यमधिकारो मे जन्मसिद्धो हि वर्तते ।
अधिकारमिमं हर्तुं न शक्तः कोऽपि मानवः ॥४॥

इति महामन्त्रोद्घोषकस्य लोकमान्यतिलकस्य जीवनचरिते पठितं मया यन्मोक्षमूलरस्यावेदनमनुरुद्ध्यैव सम्राज्ञी विक्टोरिया तं (तिलकं) कारागारान्मोचयितुमादिदेश ।

सूत्रधारः—आं स्मृतम् । तस्यैव महाप्राणस्य मोक्षमूलरभट्टस्य जीवनमनुरुद्ध्य श्रीभवानीशंकरत्रिवेदग्रथितवस्तुना मोक्षमूलरवैदुष्याभिधानेनाभिनवेन नाटकेनोपस्थातव्यमस्माभिः । तत्प्रतिपात्रमाधीयतां यत्नः । (पृष्ठभूमौ सभाकलरवमध्ये वेदमन्त्रध्वनिरिव श्रूयते ।) अहो मम विज्ञापनावसर एव किमेषः स्वरसंयोग इव श्रूयते । (कर्णौ दत्त्वा) आं ज्ञातम्—

एडीसनेन तत्कालमाविष्कारे नवे कृते ।
कर्तुं ध्वन्यंकितां पूर्वं स्वां वाचं विश्वबोधिनीम् ॥५॥

ग्रामोफोनस्य यन्त्रस्य, निर्मात्रा प्रार्थितो भृशम् ।
वेदमन्त्रं पठन्नास्ते भट्टोऽयं मोक्षमूलरः ॥६॥

(इति प्रस्तावना)

प्रथमं दृश्यम्

स्थानम्—लन्दन नगरे ग्रामोफोनयन्त्रनिर्मातृभिरायोजिता सभा । तत्र ध्वन्यङ्कनोपकरणजातैर्ग्रामोफोनादिकैश्च सहिता दृश्यन्ते जनाः ।

मोक्षमूलरः—(यन्त्र-समक्षे)

ॐ अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम् ।

आयोजकः —वेदज्ञवर ! अस्माकं ग्रामोफोनयन्त्रायाद्य सर्वप्रथमं भवता स्वमुखेन वेदवाणीं व्याहृत्य ताञ्च ध्वन्यंकितां कारयित्वा वहूपकृता वयम् । अथ च भवतो मुखाद्वेदमन्त्रं श्रुत्वाद्य कृत-कृत्या जाताः ।

मूलरः —स्वाभाविकमेवैतन्मह्यम् । यतो हि—

वेदार्पितञ्च वेदाढ्यं विद्यते मम जीवनम् ।
ऋग्वेदप्रथमो मन्त्रः प्रोक्तोऽतः प्रथमं मया ॥७॥

आयोजकः —परं यूरोप एव निवसता भवतैतादृक् संस्कृतज्ञानं कथम-वाप्तमित्यस्ति जिज्ञासितम् ।

मूलरः —सत्यम् । एषा तु स्वाभाविकी सार्वत्रिकी च जिज्ञासा । तत् शृणुत । शर्मण्यदेशस्य लाइपज़िग विश्वविद्यालये वर्षत्रयेण सम्पद्यमानायाः स्नातकोपाधिपरीक्षायाः प्रथम एव वर्षे संस्कृताध्ययनम्मे विचित्रयैव रीत्या समारब्धम् ।

द्वितीयं दृश्यम्

स्थानम्—लाइपज़िग्-विश्वविद्यालयस्य प्रांगणम् ।

(छात्राः परस्परमालपन्त इतस्ततः विचरन्ति ।)

प्रथमः —अस्मिन् विश्वविद्यालये नवागतो भाषाध्यापको ब्रोकहाउसो नित्यमेव किञ्चिदाश्चर्यंकरमसम्भाव्यञ्च वदति ।

द्वितीयः —अद्य न जाने किमद्भुतं वक्ष्यति ।

तृतीयः —(अवलोक्य) आगच्छत्येवायम् ।

प्रथमः —त्रिंशद्वर्षीयस्यास्य प्राध्यापकस्याकृतिर्वेशभूषा च विचित्रैव ।

द्वितीयः —सर्वेऽपि भाषाध्यापका एतादृशा एव दृश्यन्ते ।

सर्वे—(उपसृत्य) सुप्रभातमाचार्यवर !

ब्रोकहाउसः—भवद्भ्योऽपि सुप्रभातम् । प्रियाश्छात्रा आगच्छन्तु मया सह ।

प्रथमः—(मन्दं मन्दम्) किं करिष्यामोऽस्य कक्षायाम् ?

द्वितीयः—अद्यापि किञ्चिन्नवीनं भविष्यति ।

(इति सर्वे तेन सह प्रविष्टाः कक्षायाम्)

ब्रोकहाउसः—प्रियाश्छात्राः ! युष्माभिरेतदवगन्तव्यं यदस्ति भारतस्यैका भाषा....

प्रथमश्छात्रः—अहो ! अस्ति भारतस्यापि काचिद्भाषा ?

ब्रोकहाउसः—संस्कृतमस्ति तन्नाम ।

द्वितीयश्छात्रः—भवतु तस्याः किमपि नाम । किमस्माकं तया प्रयोजनम् ?

ब्रोकहाउसः—सा च संस्कृतभाषास्माकं ग्रीकलेटिनगॉथिकादीनां सर्वथा सदृशी अग्रजा च ।

प्रथमश्छात्रः—(मन्दं मन्दम्) प्रतीयते यदद्यानेन किञ्चिदधिकमेव पीतं मधु ।

ब्रोकहाउसः—(स्वगतम्) यथार्थं खल्वेष वदति । यतोहि—

सम्प्रत्यमरभारत्या दिव्यं पीतं मया मधु ।
आप्नुवन्ति यदास्वाद्य निर्जरत्वं नरा इह ॥८॥

मूलरः—(मन्दं मन्दम्) अहं तावदेनं पृच्छामि । (उच्चैः) महानुभाव ! भारतन्तु अहितुण्डिकप्रायो देशोऽस्तीति श्रूयते । भारतस्य काचिद् भाषास्माकं ग्रीकलेटिन्यादिभिस्सह साम्यं वहतीति कथं स्वीकर्तव्यम् ?

ब्रोकहाउसः—प्रत्यक्षे किं प्रमाणम् ? एतदस्ति र्बलिन-विश्वविद्यालयस्य संस्कृताचार्येण श्री बॉप्प महाभागेन शर्मण्यभाषायामेव लिखितं भारतशार्मण्य-भाषाणां तुलनात्मक-व्याकरणस्य खण्डद्वयम् । पश्यन्तु पठन्तु च ।

मूलरः—वृहदाकारोऽयं ग्रन्थः । कथं पारयामो ग्रन्थमिमं पठितुम् ?

ब्रोकहाउसः—भवतु, भवतां विश्वासोपजननायासां भाषाणां समा-

नानि धातुरूपाणि लिखामि। पश्यन्तु तावत्—

(श्यामपट्टे लिखति)

संस्कृते—

	अस्ति	स्तः	सन्ति
ग्रीक	...	...	...

प्रथमश्छात्रः—(विहसन्) पश्यन्तु, यस्या लिपिरेवैतादृशो सा भाषा न जाने कीदृशी स्यात्।

मूलरः—अहह अहह चित्रञ्चित्रमेतद्विचित्रम्। अथवा—

यादृशा भारतीया हि लिपिस्तेषाञ्च तादशी।
विचित्रादृष्टपूर्वैषा शृङ्गपुच्छयुता लिपिः ॥६॥

द्वितीयः—बाढं बाढम्। लिपिः सा च शृङ्गपुच्छयुता! (इति सर्वे हसन्ति)

ब्रोकहाउसः—(साश्चर्यम्) छात्राः किमेवमुपहसथ? अथवा नायं वो दोषः। मयैवाविमृश्यकारितयाऽऽदावेव लिखितानि देवनागराक्षराणि। अधुनाहं संस्कृतग्रीकलेटिनशर्मण्यभाषासु 'अस्' धातोः समानानि रूपाणि रोमनाक्षरैर्लिखामि। पश्यन्तु—

(इति भाषाचतुष्टयस्य रूपाणि रोमन लिप्यां लिखति।)

ब्रोकहाउसः—अवलोकितानि भवद्भिस्सर्वासु भाषासु समानानि रूपाणि। अधुना वदन्तु संस्कृतस्य यूरोपीयभाषाणाञ्चैक्यस्य विश्वासो जातो न वा? मूलर! त्वमेव वद।

मूलरः—सत्यमेव, संस्कृतन्तु ग्रीकलेटिनभाषाभ्यां सर्वथा साम्यं वहतीति लक्ष्यते। अधुना त्वहमपि संस्कृतं पठिष्यामि।

ब्रोकहाउसः—अवश्यमवश्यम्। प्रिय मूलर! अहं जानामि यत्त्वं निर्धनोऽपि सन् परिश्रमशीलो मेधावी चासि। ग्रीकलेटिनभाषे त्वयाधीतचरे एव। अहञ्च ग्रीक्या लेटिन्यया च सह तुलनात्मकपद्धत्यैवं पाठयिष्यामि, येन, स्वल्पेनैव कालेन संस्कृते कृतविद्यो भविष्यसि। ततश्च त्वयाऽस्य लाइपज़िग् विश्वविद्यालयस्य यशोवर्धिष्यत इत्यप्यहं स्फुटं पश्यामि।

सर्वे—श्री गुरो! वयं सर्वेऽपि संस्कृतं पठिष्यामः। संस्कृतमवश्यं पठिष्यामः।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

तृतीयं दृश्यम्

स्थानम्—डेस्साउ नगरे मोक्षमूलरस्य निष्कुटः।

मूलरः—सस्वरं पठति—

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैश्शिलाया-
मात्मानन्ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः॥

अग्रजा—अनुज! किं गायसि?

मूलरः—मेघमेदुरमम्बरं दृष्ट्वा सहसैव मे मनसि मेघदूतपठनेच्छा जाता। अथवा क्व शर्मण्य देशस्य शीतमेघानामेकरूपता, क्व च कालिदासस्य नितान्तनीलोत्पलकान्तिसुभगः प्रभाप्रभिन्नाञ्जनाचलसन्निभस्सघनघनविलासः। अपि च—

विना वल्मीकमेघेन द्योतितेनोष्णरश्मिना।
रत्नच्छायं कथञ्चित्रं भवेदाखण्डलं धनुः॥१०॥

अग्रजा—सत्यमेव मधुरा संस्कृतभाषा। एकवारं तामेव गीतिकां पुनः श्रावय।

मूलरः—यथेच्छसि। (त्वामालिख्येत्यादि पद्यं पुनः पठति।)

अग्रजाः—हन्त! अस्यार्थोऽपि मयाऽवगतः स्यात्।

मूलरः—अग्रजे! एतदर्थमेव कालिदासविरचितस्यास्य मेघदूताख्यस्य गीतिकाव्यस्य शर्मण्यभाषायां पद्यानुवादः पूर्वमेव मया प्रारब्धः।

अग्रजा—प्रियम्मे! मेघदूतस्य त्वया शर्मण्यामनुवादोऽपि प्रारब्धः एतत्त्वतीव शोभनम्। अथ च प्रतीयते यत्-संस्कृतशर्मण्ययोरपि साम्यमस्ति?

मूलरः—न केवलं साम्यं तादात्म्यमप्यस्ति। यथाहि—

शब्दाः

संस्कृत	जर्मन	फ़ारसी	आंग्ल
दाघः	टाख tagh	दाग़	day
नक्तम्	nacht	X	night

वुध्नः	बोडेन boden	बुनियाद	bottom

धातवोऽपि

अस्ति	इस्ट ist	अस्त	is
सन्ति	ज़िन्ट sind	अन्द	
धा(दधाति)	डु tu:n	दास्तन	do

एवमेव समस्ताः पारिवारिका मातृपितृस्वस्रादयः शब्दा, स्वाङ्गनामानि, सर्वनामानि, संख्यावाचकपदानि पशुपक्षिणाञ्च नामानि, सर्वे धातवश्च संक्षेपतः सर्वासां भारतशर्मण्यभाषाणां सम्पूर्णः शब्दराशिः व्याकरणञ्च समानमेव। अनया तुलनात्मकरीत्यैव मया सत्वरमेवाधीता संस्कृत भाषा।

अग्रजा—अधुना तु संस्कृतपिपठिषा जागृता मे मनस्यपि।

मूलरः—सोदरे! अन्यदपि शृणु।

अग्रजा—अहं किं शृण्वानि?

'त्वया मद्वचनं श्राव्यं, श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम्।'

मूलरः—कथय।

अग्रजा—अनुज! त्वन्तु जानास्येव यत्स्वयौवन एवासह्यं वैधव्यदुःखभारमुद्वहन्त्यापि पूज्यजनन्याऽऽशैशवादेवावां कथञ्चित् पालितौ पोषितौ पाठितौ च। अपि चास्माकमस्य डेस्साउनगरस्य ड्यूकमहोदयेन प्रदत्तया स्वल्पया वृत्त्या त्वया च सर्वत्र प्रथमं स्थानं लब्ध्वा प्राप्तया छात्रवृत्त्याद्यावधि येनकेन-प्रकारेण निर्वाहो जातः। अधुना माता वाञ्छति (विलोक्य) अहो! सा त्विहैवागच्छति।

मूलरः—(सगद्गदम्) अम्ब! पश्येदम् मम पुस्तकम्।

माता—वत्स! किमेकं पुस्तकं पश्यानि? तव तु वहूनि पुस्तकानि...

मूलरः—गृहीतं ते वचनं मातः। अयन्तु हितोपदेशइत्याख्यस्य संस्कृतपुस्तकस्य शर्मण्यभाषायां मया विहितोऽद्यत्व एव प्रकाशितश्चानुवादः। अत्रास्ति मम प्रियः श्लोकः। शृणु—

सर्वं करगतं तस्य सन्तुष्टं यस्य मानसम्।
उपानद्गूढपादस्य ननु चर्मावृतैव भूः॥

(चाटुकारितामिव कुर्वन्) मम मधुरे मातः! अधुनाहमिच्छामि...

माता—त्वं किमिच्छसि इति त्वहं न जाने। परमहमिच्छामि यदधुना त्वं विंशतिवर्षदेशीयो युवकः स्नातकश्चासि। अतएव—क्वचिदध्यानं लब्ध्वा दारिद्र्यं नोऽपसारय।

मूलरः—अत्र तु कोऽपि सन्देहो नास्ति यत्कुत्रचिदध्यापको भूत्वाहं स्वस्य युवयोश्चोदरपूर्तिकरणे सक्षमो भविष्यामि, परं मातः! तदा मम संस्कृतस्य किं भविष्यति?

माता—नास्ति मे किमपि प्रयोजनं संस्कृतेन। त्वया त्वधुना···

मूलरः—अम्ब! त्वन्तु जानास्यैव यल्लाइपज़िग्विश्वविद्यालयात् पी-एच. डी. इति स्नातकोपाधिं लब्ध्वा श्री बॉप्पमहाभागात्संस्कृतमधिकमध्येतुमहं र्बालिननगरमगच्छम्। तत्रैव मया निर्णीतं यदधुना पेरिसविश्वविद्यालयस्य विख्यातवेदविदुषः श्रीवर्नूफमहाभागस्य समीपं गन्तव्यं संस्कृतज्ञानवैशिष्ट्यसम्पादनाय। त्वदाशीर्वादग्रहणायैवाहं र्बालिनतोऽत्रागतः। अधुना यदि त्वमनुमन्यसे, पेरिसं प्रस्थातुमिच्छामि मातः!

माता—पुत्र! यदि तवैष एवाभिलाषस्तर्हि ममापि निर्णयं शृणु—

मूलरः—(स्वगतम्) माता न जाने किं वक्ष्यति? (प्रत्यक्षम्) कथय मातः, कथय। तवादेशो नतेन शिरसा पालनीयः।

माता—तव संस्कृतम्प्रतीदृशमुत्कटमनुरागमालोक्य मयाऽपि निश्चितम्। शृणु वत्स!

प्रत्यूहं नाचरिष्यामि संस्कृताध्ययने तव।
गृहाणेदं धनं किञ्चित्पूर्णकामो भवाधुना॥११॥

(इति द्रव्यपोट्टलिकां तस्मै प्रदातुमुद्युङ्क्ते।)

मूलरः—(प्रहर्षितः सन्) सत्यमेवाम्ब! आकृतिरिव तव स्वान्तमपि कमनीयं कोमलतरञ्च। परमेतद्द्रव्यं कुतः प्राप्तं त्वया?

माता—तव पूज्येन पित्रा विसृष्टमेतद् द्रव्यं मयाद्यावधि संरक्षितम्। सदुपयोगस्यास्य कालोऽयं सम्प्राप्त इति मत्वा न्यासमिमं तुभ्यमर्पयामि। गृहाण वत्स! गृहाण। तव पाथेयमेतद् भविष्यति।

मूलरः—(सगद्गदम्) अहो मम करुणावरुणालये स्नेहार्द्रहृदये मातः।
(इति तस्याः पादयोः पतति।)

माता—उत्तिष्ठ वत्स, उत्तिष्ठ। (तमुत्थाप्य परिष्वजति) पुत्र! त्वमेव मे जीवनाधारोऽसि, अतएव यद्यपि त्वां देशान्तरं प्रेषितुं नोत्सहते

मे मनस्तथापि यथाकामं पेरिसं प्रतिष्ठ। तत्र च—

वर्नूफकार्यं विधिवद्विधेयं
स्थाप्यञ्च लक्ष्यं सततं समक्षे।
अवाप्य पश्चादजरं यशोऽपि
श्रेयश्च सौख्यञ्च लभस्व वत्स ।१२।

मूलरः —ईशप्रसादादाशीर्वादस्तवायममोघस्स्यात्। अथ च—

जीवने मे समग्रेऽपि सर्वत्र च सदैव च।
तवाशीर्वाद एवायं पाथेयम्मे भविष्यति ॥१३॥

तदधुनानुजानीहि मां मातः ! पेरिसं प्रस्थातुम्। प्रणमामि ते चरणौ। अग्रजे ! त्वामपि वन्दे।

उभे—(सास्रम्) शिवास्ते पन्थानस्सन्तु।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति प्रथमोऽङ्कः

द्वितीयः अंकः

प्रथमं दृश्यम्

स्थानम्—पेरिसनगरे आचार्य बर्नूफस्य गृहाङ्गणम् ।

(ततः प्रविशतः मेक्समूलररुडोल्फरांथौ)

रॉथः—मूलर ! प्रसन्न इव लक्ष्यसे ?

मूलरः—वयस्य ! आचार्यवर्नूफस्य ऋग्वेदप्रथममण्डलमधिकृत्य प्रवचनजातं श्रावं-श्रावं स्मारं-स्मारञ्च तथानन्दमग्नोऽहं यथा धनाभावजं क्षुत्पिपासाजन्यञ्च सर्वं क्लेशजातं विस्मृतमिव ।

रॉथः—एवमेवम् ।

मूलरः—मया कठकेनेशेत्युपनिषत्त्रयमधीतचरम् । विख्यात दार्शनिक शिलरमहोदयस्य कृते केनोपनिषद् शर्मण्यभाषायां मयानूदितापि । अतएव उपनिषत्तत्त्वमनुरुद्ध्य ह्यो होराद्वयं आचार्यस्य प्रवचनं श्रुत्वा प्रहर्षपरतन्त्रोऽभवम् । परं यदाचार्येण स्वप्रवचनान्ते 'किन्तु' इत्युक्तं, तदा मम मनसि जातं यद् खिष्टीय संस्कारवशादधुना केनचिद् ग्रीकेनान्येन वा प्रतिपादितं तत्त्वं उपनिषद्भ्योऽपि श्रेष्ठतरमिति न प्रतिपादयेदाचार्यः । परमाचार्यस्तु मुहूर्तं ध्यानमग्न इवाभवत्ततश्च 'वेदाः' "अहा अनिर्वचनीया हि वेदाः ।" इत्येवावोचत् ।

मया तु स्नातककक्षायामधीतानि कानिचित्सूक्तानि विहाय वेदस्य दर्शनमपि न कृतम् । तत्कथमहं जाने वेदमहिमानम् । परं श्रीगुरवः सत्यमेव वदन्तीति मन्ये ।

रॉथः—ऋग्वेदस्य कंचिद् अशं विहाय वेदास्तु कुत्रापि मुद्रिता न सन्ति । तथाप्यस्य पेरिसविश्वविद्यालयस्य ग्रन्थालये वेदानां पाण्डुलिपयो विद्यन्ते । श्रीवर्नूफश्च तेषां प्रतिलिपिकरणे सम्पादने

च प्रवृत्तचरः।

मूलरः—सखे ! अस्माकं वेदविदाचार्यो बर्नूफोऽवेस्ताग्रन्थस्यापि पारंगतः।

रॉथः—सत्यं वदसि। बर्नूफमहोदयेन तु ईरानदेशीय 'दारा' प्रभृतिभिस्सम्राड्भिर्लिखितानां पारसीकाभिलेखानां कीलाक्षरैर्लिखिता पुरातना दुर्बोधा लिपिरपि पठिता। येन 'पुरातनपारसी भाषा अपि संस्कृतस्यैवेका विभाषास्ति' इति सुस्पष्टं जातम्।

मूलरः—सत्यं वदसि। अपिच—

आचार्यबर्नूफेन यदधीतमनुष्ठितम्।
तत्सर्वमनुकर्तव्यमस्माभिः प्रयतात्मभिः।१।

(विलोक्य) अयं गोल्डस्टुकरोऽप्यागच्छति।
तदुपतिष्ठामस्तावदाचार्यचरणान् सहैव।

(इति निष्क्रान्तौ)

द्वितीयं दृश्यम्

स्थानम्—पेरिसनगरे आचार्य बर्नूफस्य सदनम्।

(ततः प्रविशति स्वप्रुताभिस्सेव्यमानो भूर्जपत्रताडपत्रनवपुरातनकर्गलपत्रादिभिर्निर्मितेन हस्तलिखितेन ग्रन्थप्रचयेन परिवृतः किञ्चिल्लिखन्नाचार्यो बर्नूफः।)

सर्वे—(प्रविश्य) प्रणमाम आचार्यचरणान्।

बर्नूफः—वैदुष्यमवाप्नुथ। प्रियाश्छात्रा भवन्तस्तु जानन्त्येव यत्तपस्स्वाध्यायनिरतैर्भारतीयैर्ब्राह्मविद्भिर्वेदाः सहस्रशोवर्षाणि सम्यग् रक्षिताः।

मूलरः—पुस्तकं विनैव, विनैव चान्येन केनापि लिखितरूपेण श्रुतिपरम्परया एवाद्यावधि वेदानां संरक्षणं सत्यमेवाश्चर्यकरम्। अपूर्वा खलु श्रवणस्मरणशक्तिः भारतीयानाम्।

बर्नूफः—परमद्यत्वे तु वेदानां विशेषतस्तद्भाष्याणां पाण्डुलिपयो: भारतेऽपि दुर्लभाः सन्ति। यूरोपीयसंस्कृतज्ञानां प्रेरणया प्रयत्नेन चांग्लदेशस्य फ्रान्सस्य च शासनेन सभाष्याणां वेदानां पाण्डुलिपयो भारतादादाय स्वकीयेषु ग्रन्थालयेषु निवेशिताः। परं ग्रन्थालयस्थानां वेदानामुपयोक्तारस्त्वत्र न दृश्यन्ते, तदभावे चात्रापि ते कीटभोज्यतां यास्यन्तीति शंके।

मूलरः—एतद्विषये किं वयं किमपि कर्तुं न पारयामः ?

बर्नूफः—कथन्न पारयामः। पारयामो वयम्। अधुनास्माभिरेवं प्रयतितव्यं यथा वेदाः सभाष्यास्सुसम्पाद्य मुद्रापयित्वा च भारताय प्रत्यर्पिताः स्युः। तदर्थमेषो रूडोल्फरॉथोऽथर्वणे यजुषि च पूर्वमेव कृतप्रयत्नोऽस्ति। अथ चायं गोल्डस्टुकरोऽपि कार्येऽस्मिन्प्रवृत्तचरः। (रॉथस्टुकराववलोक्य) वत्सौ, युवां स्वकार्यमनुतिष्ठथः।

रॉथस्टुकरौ—यथादिशत्याचार्यः। **(इति स्व-स्व ग्रन्थ-सम्पादने निरतौ)**

बर्नूफः—वत्स मूलर ! त्वं नवीनतमः कनिष्ठतमोऽपि च सन् योग्यतमोऽसि। अतएव तव जीवनं वेदायैव भवत्वित्यहं कामये। एवं कृत्वा त्वं मे कार्ये परमः सहायको भविष्यसि।

मूलरः—वेदार्पितं मे जीवनम्, श्री गुरोराज्ञयाद्यप्रभृति।

बर्नूफः—वत्स ! तव तु देवनागराक्षराणि सुन्दराणि सन्ति। त्वं स्वीयैः सुन्दरैरक्षरैर्मया सम्पादितस्य ऋग्वेद-प्रथममण्डलस्य सायणभाष्यसहितस्य प्रतिलिपिकरणे सन्नद्धो भव। तदर्थञ्च त्वं किंचित्पारिश्रमिकमप्यवाप्स्यसि, येन ते स्वल्पाहारव्यवस्था सुकरा स्यात्।

मूलरः—सन्नद्धोऽस्मि।

बर्नूफः—परं वेदकार्ये प्रवर्तनात्पूर्वं त्वया द्वे प्रतिज्ञे कर्तव्ये।

मूलरः—आज्ञापयतु गुरुदेव !

बर्नूफः—प्रथमन्तु सायणभाष्यस्य प्रतिलिपिं सम्पादनञ्च कुर्वता त्वयास्यैकापि पंक्तिर्न परिहर्तव्या, एकमप्यक्षरं न त्याज्यम्। अपरञ्च अस्मिन् वेदकार्ये प्रवृत्तेन त्वया धूम्रपानं न कर्तव्यम्।

मूलरः —गृहीतं श्रीगुरोर्वचनम्—

सायणीयस्य भाष्यस्य त्यक्ष्यामि नैकमक्षरम् ।
वेदलेखनकार्ये मे वर्जितं धूम्रपाणकम् ॥२॥

वर्न्फः —वत्स ! अहन्तु तथा प्रयतिष्ये यथाचिरेणैव त्वं स्वयमेव वेद-भाष्यस्य सम्पादने सक्षमो भविष्यसि । पश्चाच्च त्वया लन्दन-नगरं गत्वा तत्रत्य इण्डिया-हाउस-ग्रन्थालये सुरक्षिताः वेदभाष्यस्य पाण्डुलिपयोऽपि द्रष्टव्याः । ताभिस्सह साक्ष्यं कृत्वा सायणभाष्यस्य पाठः सुनिर्धारितः स्यात् ।

मूलरः —प्राध्यापक महाभाग, परमेतत्कार्यन्तु सुमहत् श्रमसमयव्यय-सापेक्षं वर्तते ।

वर्न्फः — वत्स ! सत्यं वदसि । परमहमाशासे यत्त्वया सम्पादितस्य सायणभाष्यसहितस्य ऋग्वेदस्य मुद्रापणाय त्वमिंग्लैण्डदेशस्य ईस्ट इण्डिया कम्पन्यानुदानं लप्स्यसे । अधुना-अधीतिवोधाचरणप्रचारणपरैरस्माभिर्भाव्यम् ।

मूलरः —ईशकृपया गुरोर्वचांस्यवितथानि स्युः ।

वर्न्फः —एषा वेदाज्ञा सदा स्मरणीया—

'विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम
गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि ।'

तृतीयं दृश्यम्

स्थानम्—आक्सफोर्डविश्वविद्यालयस्य प्रांगणस्थो मोक्षमूलरावासः ।

(ततः प्रविशति ससायणभाष्यस्य ऋग्वेदस्य खण्डत्रयेण, नानाविधाभिः पाण्डुलिपिभिः प्रूफपत्रैर्लेखिनीमसिपात्रादिभिश्च परिवृतः स्यन्दनीस्थो मोक्षमूलरः ।)

मूलरः — (स्वगतम्) रमणीयं खल्वाक्सफोर्डविश्वविद्यालयस्येदं

प्राङ्गणम्। श्रीवर्नूफमहोदयस्य सकाशादागत्यात्र निवसता मया द्वादशभिर्वर्षैः ससायणभाष्यस्य ऋग्वेदस्य मण्डलचतुष्टयं त्रिभिः खण्डैर्मुद्रापितम् (चिन्तामग्नो भूत्वा) परमस्य पञ्चम-मण्डलस्य सायणभाष्ये तु सन्ति कानिचिद्दुर्बोधानि स्थलानि (विचार्य) अथवा तेषां विषये श्रीमताचार्येण विल्सनमहोदयेन सह…

(ततः प्रविशत्याचार्यो विल्सनः]

विल्सनः —सुप्रभातम् ! प्रिय मोक्षमूलर !

मूलरः —(विलोक्य) भवतेऽपि सुप्रभातम्, मान्यवर ! स्मरणसमकाल-मेवात्रभवतां दर्शनं जातम्।

विल्सनः —विद्वत्प्रवर ! सायणभाष्यस्य प्रामाणिकपाठनिर्धारणे पूर्व-रूपाणां प्रूफानां वा पठनेऽहर्निशं व्यापृतं भवन्तमालोक्य मोमुद्यतेतरां मे चेतः।

मूलरः —तत्रभवतः प्रशियाराजदूतस्य महामहिम्नो वुन्शेनमहोदयस्य महत्या प्रयत्नपरम्परया भवतश्च तस्य सततमनुमोदनेनैवे-स्टइण्डिया कम्पनी भूरिव्ययसाध्यां ऋग्वेदप्रकाशनस्य मम योजनामङ्गीचकार। भारतात् सायणभाष्यस्य तत्रत्यैः पण्डितैः प्रतिलिपिं कारयित्वा तासामत्रानयनाय च भगीरथः प्रयत्नो विहितः कम्पन्या। भगवत्प्रसादादेवैतदिति मन्ये।

विल्सनः —अद्भुतः प्रभावः श्रीवुन्शेनमहोदयस्येस्ट इण्डिया कम्पन्या निदेशकमण्डले। वेदानुरागोऽप्यस्यानुकरणीयः।

मूलरः —सत्यं वदत्यत्रभवान्। यतोहि--

"वत्स ! तव रूपेणाद्याहमेव पुनर्नवयुको जातइत्येवमनुभवामि। वेदप्रकाशनकार्यन्तु मया पूर्वं चिन्तयित्वाप्यनारब्धमेवासीत्। यतो हि मिस्रदेशस्योत्खननैर्निर्गतयातुलया सम्पत्त्या तदात्वे मे चेतश्चोरितमभूत्" इत्यवोचद् वेदभाष्यप्रकाशनव्यवस्थां विधातुं मया प्रार्थितो मान्यो वुन्शेनमहाभागः।

विल्सनः —सायणभाष्यस्य सम्पादने घोरं तपस्तप्तंभवता। पूर्वं पेरिसेऽपि भाष्यप्रतिलिपिकरणे वर्षद्वयमेकीकृतं भवता। तत्र च—

यथालब्धेन भोज्येन स्वल्पाहारेण वा पुनः।
कृष्णां कॉफीञ्च पीत्वा वा शर्करादुग्धवर्जिताम् ॥३॥
भाष्यलेखनकार्येऽस्मिन्व्यापृतेन निरन्तरम्।
सुप्त्वा निशि तृतीयस्यां कालो नीतस्त्वयाऽनघ ॥४॥

मूलरः—गुरुदेवस्य श्रीबर्नूफस्याशीर्वादेनैव…

विल्सनः—अस्मिन्नाक्सफोर्ड विश्वविद्यालयीय मुद्रणालयेऽपि प्रत्येकमक्षरं स्वहस्तेन लिखित्वा वेदमुद्रणयोग्यं सीसकाक्षरमयं देवनागरी टाइपं निर्मापितं भवता।

मूलरः—आचार्यवर! वाराणसीवासेच्छोपचीयते मे चेतसि। परं भारतीयानां सैन्यविद्रोहं व्यपदिश्य नानुमतं मे भारतगमनं जनन्या। 'अम्ब! चिन्ता न कार्या भारतमस्माद् भूमण्डलाद्-बहिर्नास्ति। ईशछत्रच्छायया वाह्यन्तु नास्त्येवेति' पुनर्लिखितं मया। तदुत्तरप्रतीक्षापरोऽहम्। अथ चाद्यत्वे ऋग्वेदस्य खण्डत्रयमपि भारतीयैर्विद्वद्भिरासादितं स्यात्। तेषां प्रतिक्रिया न जाने कीदृशी स्यात्?

विल्सनः—सर्वं शोभनं सम्पत्स्यते। यतो हि—

प्रारब्धस्य प्रयत्नस्य फलाशापि प्रजायते।

श्रीमती किंग्सले—(प्रविश्य)

निश्चिता च फलप्राप्तिर्भविष्यति फलागमः ॥५॥

मूलरः—(विलोक्य सहर्षम्) अहो किंग्स्लेदम्पती! सुप्रभातम्।

श्री किंग्स्ले—सुप्रभातं भवद्भ्यामपि।

विल्सनः—चिराद्दृष्टावत्रभवन्तावद्य।

श्रीमती किंग्स्ले—आचार्यप्रवर! आगमनप्रयोजनमपि निवेदयामि। मोदमवाप्स्यत्यत्रभवानेतज्ज्ञात्वा यद्बहूनि वर्षाण्यूहापोहे निमज्जता ममाग्रजेन श्रीमता ग्रेम्फेलमहोदयेन युष्माकमनेन वेदज्ञमूलरेण सह स्वसुताया जार्जिनाया विवाहप्रस्तावः स्वीकृतः।

विल्सनः—प्रियं मे प्रियं मे। अयमस्माकं वेदसर्वस्वो मोक्षमूलरः—

'अकिञ्चनः सन् प्रभवोऽस्ति सम्पदाम्।'

श्री किंग्स्ले—कोऽत्र सन्देहः।

श्रीमती किंग्स्ले—वर्धेतामत्रभवन्तौ।

विल्सनः—भवन्तावपि वर्धेताम्।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

चतुर्थं दृश्यम्

स्थानम्—वाराणसी-चतुष्पथम्।

(पृष्ठभूमौ विश्वनाथमन्दिरारार्तिक्ये पठितानां पुष्पाञ्जलिमन्त्राणां घण्टापटहादिनाञ्च ध्वनयः)

(ततः प्रविशतः शिक्षकवैदिकौ।)

शिक्षकः—वैदिकवर ! यूरोपीयपण्डितानां विशेषतः शार्मण्य विप्राणामेका वसतिः काश्यां सत्वरमेव निर्मास्यत इति श्रूयते।

वैदिकः—धन्यास्ते। यतो हि—

पूर्वोपात्तैः पुण्यपुञ्जैः प्रभूतैः
श्रेयस्कामैर्लभ्यते काशिवासः।६।

शिक्षकः—परमद्यत्वे तु—

'पण्डा सांड सीढ़ी संन्यासी, इनसे वचे तो सेवे काशी',
इति न्यायेन कष्टवहुलो जातः काशिवासः। अथ च—

श्रद्धालवोऽश्रद्धधानैर्धूर्तैर्धर्मपरायणाः।
अपण्डिताश्च पण्डाभिर्मुण्डचन्ते तीर्थयात्रिणः॥७॥

वैदिकः—(कर्णौ दत्वा) एष डिण्डिमनादः श्रूयते। तच्छृण्वाव तावत्।

उद्घोषकः—(सडिण्डिमनादम्) भो भो विद्वांसोऽन्ये च श्रोतारः ! अद्य खलु सायं पञ्चवादनावसरे नगरसभागारे आंग्लदेश-वास्तव्येन शार्मण्येन श्रीमोक्षमूलर भट्टेन सम्पादितस्य ऋग्वेद-सायण-भाष्यस्य प्रामाण्यनिर्धारणायैका विद्वत्सभा सम्पत्स्यते। तत्सर्वैस्तत्रोपस्थातव्यम्। (पुनः डिण्डिमं वादयति)

(ततः प्रविशति 'अब्रह्मण्यमब्रह्मण्यमिति' वदन् कश्चित् पण्डा)

वैदिकः—अब्रह्मण्यमिति कथं प्रलपसि ? सुब्रह्मण्यमिति वद।

पण्डा—सुब्रह्मण्यन्तु मद्रास·········

शिक्षकः—(सस्मितम्) सत्यमेव पण्डापि 'देवानांप्रिय' एवासि।

पण्डा—(सहर्षम्) भवादृशानां कृपा वर्तते। परं न सर्वे मादृशाः।

वैदिकः—सत्यं वदसि।

शिक्षकः—'अब्रह्मण्यम्' सुब्रह्मण्यमित्यनयोरर्थमपि जानासि ?

पण्डा—भाव! अत्र घाटे स्थितोऽहं प्रायेण शृणोमि यज्जाते कस्मिंश्चि-

दनर्थे भवादृशाः पण्डिताः प्रायेण 'अब्रह्मण्यमब्रह्मण्यम्' वदन्ति । क्षम्यतां, नास्त्यर्थेन मे किमपि प्रयोजनम् ।

वैदिकः —अर्थदासस्य कथं नास्त्यर्थेन प्रयोजनम् ?

पण्डा —अनयोः शब्दयोरर्थं न जानामीत्यस्ति मेऽभिप्रायः ।

शिक्षकः —तर्हि श्रोतव्यम्—ब्रह्मणेऽर्थाद् वेदाय यत्सुहितं तद् सुब्रह्मण्यम् । यच्चाहितं तद्—

पण्डा — अब्रह्मण्यम् । अधुना ज्ञातम् ।

वैदिकः —सम्प्रति वदतु, कोऽनर्थो दृष्टोऽत्र यदेवं जल्पितम् ?

पण्डा —घोषणामेतां श्रुत्वा मया चिन्तितं यत्केनापि ख्रिस्तानेनाधुनास्माकं वेदोऽपि प्राकाश्यं नीतः । घोरः खलु कलिः समायातः ! किं नास्त्ययं सुमहतः खेदस्य विषयः ?

वैदिकः —हर्षस्यैवायं विषयो न तु खेदस्य । यतोहि पञ्चषैरेव वैदिककुलैरद्यावधि धृतं ऋग्वेदसायणभाष्यमधुनास्माभिरपि लभ्यं स्यादथ च वेदमन्त्राणामर्थमपि ज्ञास्यामो वयमधुना ।

शिक्षकः —परं सप्तसमुद्रपारस्थेन केनापि सायणभाष्यं शुद्धरूपेण प्रकाशितं स्यादित्यत्र तु मे मनोऽपि सन्दिहानम् ।

वैदिकः —विद्यन्ते यूरोपजा अपि वेदज्ञाः । परं मोक्षमूलरस्य तु नामाप्यश्रुतपूर्वम्......

शिक्षकः —(विचिन्त्य) अहो, जातः सभायाः समयः । तत्त्वराम ।

(इति निष्क्रान्ताः)

पञ्चमं दृश्यम्

स्थानम्—वाराणस्यां विद्वत्सभा ।

(मञ्चे प्रमुखा विद्वांसः उच्चासनस्थः सभापतिमहोदयश्चोपविष्टः । अधस्ताच्च शतशः पण्डिताः परस्परमालपन्तो दृश्यन्ते ।)

आयोजकः —सज्जनाः ! शान्तं शान्तम् । अधुनास्या विद्वत्सभायाः

कार्यक्रमः समारभ्यते। तत्रादौ श्रीमान् शिवदासो वैदिकमङ्गल-
माचरिष्यति।

शिवदासः—हरिः ॐ अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम:।

आयोजकः—अधुना छात्राः सरस्वतीवन्दनां विधास्यन्ति।

छात्राः—(सरस्वतीवन्दनां गायन्ति)

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता,
या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता,
सास्मान्पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा॥

आयोजकः—आदरणीयाः सभापतिमहोदयाः पूज्याः स्वामिपादा मान्या विद्वांसश्च! श्रीमता मोक्षमूलरभट्टेन सद्यः प्रकाशितस्य ससायणभाष्यस्य ऋग्वेदखण्डत्रयस्य प्रामाण्यनिर्धारणायैषा विद्वत्सभा समायोजिता। मोक्षमूलरसम्पादितस्यास्य ऋग्वेदस्य प्रथमखण्डस्य मुखपृष्ठे देवनागराक्षरैः संस्कृतभाषायां यन्मुद्रितं तदेव तावद्वाचयामि—

ऋग्वेद संहिता

सायणाचार्यविरचितमाधवीयवेदार्थप्रकाशनामकभाष्य - सहिता शर्मण्यदेशोत्पन्नेनेंग्लैण्डदेशनिवासिना भट्टमोक्षमूलरेण संशोधिता श्रीमद्भारतवर्षाधिपतीनामनुमत्या च उक्षतरणाभिधाननगरे विद्यामन्दिरसंस्थानमुद्रायन्त्रालये मुद्रिता।

संवत् १९०६ वर्षे।

प्रथमाष्टकः

अथ चास्य प्रत्येकस्य खण्डस्यारम्भे वेदमहिम्नो व्यञ्जिकया भाष्यपाठान्तरपरिचायिकया च महत्या भूमिकया पदे-पदे प्रस्फुटिता वेदेषु श्रद्धास्य सम्पादकस्य। अधुना भवत्सु कोऽपि पण्डितोऽत्रागत्यास्य ग्रन्थस्य यत्किमपि पृष्ठमेकं वाचयतु,

येनास्य सम्पादकस्य वैदुष्येण महता श्रमेण च सर्वे परिचिताः स्युः।

(पण्डितः पृष्ठमेकं वाचयति)

शिक्षकः—(श्रुत्वा) सर्वथैव शुद्धं प्रतीयत एतत्तु।

वैदिकः—शुद्धतममिति वाच्यम्।

शिक्षकः—महतो हर्षस्याश्चर्यस्य च विषयोऽयम्।

आयोजकः—अथ चात्र भाष्यगतानामुद्धरणानां मूलग्रन्थनामोल्लेख-पुरस्सरं परिचयांका अपि प्रदत्ताः। अपरञ्च—मेक्समूलरेण यदत्र स्वनाम्नः 'मोक्षमूलर' इति रूपेण संस्कृतीकरणं विहितं, तदपि सर्वथा समीचीनं सार्थकञ्चेति मन्यामहे। यतो हि—

वेदा मोक्षस्य मूलं हि तान्रात्यर्थात् प्रयच्छति।
अन्वर्थकाभिधानोऽयं विद्यते 'मोक्षमूलरः' ॥७॥

सभापतिः—एतत्सर्वमालोच्यात्र समवेताः सर्वे वयं काशिस्थाः पण्डिताः सम्यग्विचार्य, पुस्तकमिदमाद्यन्तं परीक्ष्य च—

'मोक्षमूलरभट्टेन सम्पादितः सायणभाष्येण सहितः ऋग्वेदः सर्वथा शुद्धोऽस्तीति सबहुमानमुद्घोषयामः। प्रार्थयामश्च यत् श्रीमान् मोक्षमूलरभट्टोऽनेनैव क्रमेण समग्रमपि ऋग्वेदं प्रकाश्याखिलं संस्कृतजगत् भारतञ्चोपकृतं विदध्यादिति।'

अस्य निर्णयस्यैका प्रतिः श्रीमते मोक्षमूलरभट्टाय सादरं प्रेषिता स्यादित्यपि निर्णीयते।

सर्वे—जयतु जयतु विश्वनाथः। हर हर महादेव।

(इति सर्वे निष्क्रान्ताः)

द्वितीयोऽङ्कः समाप्तः

तृतीयः अंकः

प्रथमं दृश्यम्

स्थानम्—सम्राज्ञी विक्टोरियाया ओस्वोर्न प्रासादः ।

(ततः प्रविशति प्रतिहारी)

प्रतिहारी—भो भो राजप्रासादस्याधिकारिणः चतुःषठ्यधिकाष्टा-दशशततमस्य ख्रीष्टाव्दस्य जनवरीमासस्याद्य षष्ठ्यां तारिकायां रात्रावष्टवादनावसरे भावी सम्राजा प्रिन्स आफ वेल्स इत्याख्येन युवराजेन अन्यैश्च सर्वैः परिजनैः परिवृता महामहिमशालिनी महामान्या सम्राज्ञी विक्टोरियास्य ओस्वोर्न इत्याख्यस्य प्रासादस्य 'भुक्तास्थानमण्डपं' मोक्षमूलरभट्टस्य व्याख्यानं श्रोतुमाजिगमिषति। अतः सर्वैः वहुमानपुरस्सरं स्व स्व स्थाने सावधानतया स्थातव्यम् ।

(ततः प्रविशति सपरिजना सम्राज्ञी विक्टोरिया)

मूलरः—महामान्यायै अत्रभवत्यै सम्राज्ञ्यै सप्रणिपातं सादरञ्च सुसान्ध्यम् ।

विक्टोरिया—भवतेऽपि सुसान्ध्यम् । महानुभाव ! भवतो व्याख्यानं श्रोतुं वयमुत्सुकाः स्मः ।

मूलरः—अत्रभवत्या महामान्यया सुअवसरोऽयं मे प्रदत्तः, तदर्थमत्यन्तं कृतज्ञोऽस्मि ।

विक्टोरिया—तदारभ्यतां स्वप्रवचनम् ।

मूलरः—महामान्ये सम्राज्ञी ! माननीय युवराजमहोदय ! मान्याः परिजनाश्च—

"ॐ अग्निमीडे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विज् ।
होतारं रत्नधातमम्" ।

अयमस्ति तस्य ऋग्वेदस्य प्रथमो मन्त्रः यस्य ससायणभाष्यस्य सप्तममण्डलपर्यन्तं खण्डचतुष्टयं पूर्वमीस्ट-इण्डिया कम्पन्यास्ततश्च भवतः सर्वकारस्यानुदानेनाद्यावधि प्रकाशितम् । स्वल्पैरेव वर्षैः सम्पूर्णे ऋग्वेदे प्रकाशिते सति न केवलं विश्वस्य प्रत्नतमापितु समग्रस्या आर्यजातेः श्रेष्ठतमा भारतीयार्याणञ्च पवित्रतमा महती रचना सुरक्षिता स्यात् । पूर्वन्तावदेतदेव सादरं सधन्यवादञ्च निवेदयितुकामोऽस्मि अत्र भवत्यै महामान्यायै सम्राज्ञ्यै । (एवं व्याख्यानमुपक्रम्यते)

विक्टोरिया —महानुभाव ! ऋग्वेदस्य, तस्य सायणभाष्यस्य च महिमानं प्रकटयता भवताद्य वहूपकृता वयम् । एवमेव संस्कृतभाषया सह ग्रीकलेटिनादिभाषाणां भवता कृतया तुलनयापि वयमाश्चर्याभिभूता जाताः । महानुभाव ! एतत्तु सर्वविदितमस्ति यदेषु दिवसेषु दशवर्षाणि यावदस्माभिः कस्यापि व्याख्यानं न श्रुतम् । अद्य तु घण्टाद्वयपर्यन्तं भवतो व्याख्यानं श्रुत्वा वयं तथा प्रहर्षपरतन्त्रा जाता, यथा स्वजीवने रात्रौ कदापि न त्यक्तपूर्वं शलाकावयनकार्यमपि अस्माभिरद्य विस्मृतम् । यद्यपि तदर्थं ऊर्णातन्तुवयनशलाकादि एषा सर्वा सामग्री यथानियमं पूर्वमेवात्र सुसज्जीकृता विद्यते । अथ च—

महानुभाव ! भवतो व्याख्यानस्य कार्यक्रमः पूर्वन्तु दिवसैकस्यैवासीत्, परमधुना वयं श्वोऽपि भवतो व्याख्यानं श्रोतुमभिलषामः ।

मूलरः —एतेन प्रोत्साहकेनाशीर्वचसात्यन्तमनुगृहीतोऽस्मि—अत्र भवत्या महामान्यया सम्राज्ञ्या ।

सप्रणिपातं सधन्यवादञ्च महामान्यायै सम्राज्ञ्यै शुभं नक्तम् ।

विक्टोरिया—शुभं नक्तम् ।

(इति सर्वे निष्क्रान्ताः)

द्वितीयं दृश्यम्

स्थानम्—आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयस्य प्रांगणस्थं मोक्षमूलरसद्म ।

(ततः प्रविशतः पियानोवादनपरः मोक्षमूलरस्तस्य पत्नी जार्जिना च ।)

जार्जिना—हृद्या खल्वेषा मूर्च्छना !

मूलरः—प्रिये ! तव संगीतसुधालहर्या मधुरतरञ्जायते मे वाद्यम् ।

जार्जिना—सङ्गीतकला कुत आसादिता प्रिय ! त्वया ?

मूलरः—पूज्यो मे पिता पियानोवादनपटुरासीदिति श्रूयते । मातापि संगीतविशारदास्तीति तु जानास्येव ।

जार्जिना—एवम् । (सस्मितम) मया तु चिन्तितं यदुद्वाहात्पूर्वं काप्यासीत्ते……

मूलरः—(सस्मितम) अवश्यम् । प्रत्यहं सा विहारानन्दं मे प्रायच्छत् । साचासीदेका शोभना वडवा ।

जार्जिना—अहो ! सुन्दरी तरुणी च ।

मूलरः—सदश्वा, न तु तरुणी ।

जार्जिना—(सस्मितम्) । अपह्नुतिरेषा खलु……

मूलरः—वक्रोक्तिरेषा नत्वपह्नुतिः ।

(ततः प्रविशति केशवचन्द्रः सेनः)

श्रीसेनः—बहुकालो जातोऽत्र भवतामातिथ्यसौख्यमनुभवतो मे । अधुना पुनः भारतं प्रस्थातुं कामयेऽपि च……

(ततः प्रविशतः रामजीदासच्छबीलदासः श्यामजीकृष्णवर्मा च)

रामश्यामौ—नमस्ते महाशय !

मूलरः—भवद्भ्यामपि सुप्रभातम् ।

श्यामजी—(श्री सेनं विलोक्य) अहो ब्रह्मसमाजस्य मान्यो नेता केशवचन्द्रसेन महोदयोऽप्यत्रैव विराजते ।

श्री सेनः—आंग्लदेशे विद्यमानोऽहं प्रायेणात्रैव निवसामि ।

जार्जिना—आत्मीयता खल्वेषा सेनमहोदयस्य ।

मूलरः—जार्जिने ! एषो रामजीदासच्छवीलदासोऽद्यत्वे केम्ब्रिजविश्वविद्यालयेऽधीयानः । अयञ्च श्यामजीकृष्णवर्मात्र बेरिष्टरीमधिजिगमिषति । श्रीमत्स्वामिदयानन्दसरस्वती-

पादानां सच्छिष्यावेतौ संस्कृतप्रचारनिरतावत्रापि।

श्यामजी—विद्वद्वर ! मद् ुरुवर्यं श्रीस्वामिपादानां पत्रमधिगतमद्यै व। तत्र तैः 'स्वऋग्वेदभाष्यविषयेऽत्र भवतामभिमतं जिज्ञासितम्।

जार्जिना—श्रीमद्दयानन्दविरचितभाष्यसहितस्य मासिकरूपेण प्रकाशितचरस्य च,ऋग्वेदस्यायं मे भर्ता प्राथमिको ग्राहकोऽस्तीत्यवगन्तव्यं भवद्भिः। किन्तु मम भर्तुर्विषये भारते विविधा वार्ताः...

रामजी—सत्यं वदत्यत्रभवती। तत्र त्वेषोऽपि प्रवादः श्रूयते, यत् क्रिश्चियन मतस्य प्रचारपरायण एवास्ति मोक्षमूलरो वेदव्यपदेशेन।

श्री सेनः – भारते केचिज्जना प्रवदन्तु किमपि। विपरीतमतो तथ्यन्त्वेतद्विश्वविदितमस्ति यदुपरते श्री विल्सने मोक्षमूलरो हिन्दूधर्ममनुमन्यते नतु क्रिश्चियनमित्याकलय्य ऑक्सफोर्डविश्वविद्यालयस्य संस्कृताचार्यपदे निर्वाचितो नाभूदयम्।

मूलरः—पश्चाच्च विश्वविद्यालयेनानेनैव तुलनात्मकभाषाविज्ञानाचार्यपदं मह्यमर्पितम्। मया तु तेन पदेन संस्कृतसेवायां व्यवधानो दृष्टः। ततश्च—

प्रभुद्वयं पुमानेकः सेवितुं न किलार्हति।
इति कृत्वा पदं श्रेष्ठमपि त्यक्तं मया पुनः॥६॥

रामजी—संस्कृतकार्यार्थं कोऽन्य एतादृशं त्यागं कुर्यात्?

मूलरः—सेनमहाशय ! भवतापि संकीर्णताकोपोऽनुभूयतेऽद्यत्वे।

श्री सेनः—सत्यम्। ममावयस्कायाः सुतायाः कूचबिहारनरेशेन सह भाविनं विवाहमुद्दिश्य भारते मम विरोधे वितण्डारब्धा ममानुयायिभिर्ब्रह्मसमाजसदस्यैरेव। अतएव मया सत्वरमेव भारतं प्रस्थातव्यमधुना।

जार्जिना—(सस्मितम्) सेन महाभाग ! अस्या साम्प्रदायिकसंकीर्णतायाः दंशं तु वयं सदैवानुभवामः। यथा हि मूलरस्य क्रिश्चियनमते आस्था श्लथेति मन्वानेन मम पूज्यपित्राऽऽवयोर्विवाहो वर्षषट्कं यावन्नानुमत इत्यप्यवगन्तव्यं भवद्भिः।

रामजी—अद्यत्वे खलु भवतां भारतागमनस्य प्रतीक्षापि क्रियते स्वामिपादैरन्यैश्च ।

जार्जिना —सुष्ठु स्मारितम् । श्रीमतो डीन स्टेनले महोदयस्य प्रयत्नेन प्रिंस आफ वेल्स-महोदयस्यागामिन्यां भारतयात्रायां तदनुयायिवर्गे मम भर्तुर्नामापि सन्निवेशितम् । स्वल्पैरेवाहोभिर्भारतयात्रा सम्पत्स्यतेऽधुनास्य ।

मूलरः —भारतगमनायोद्यतः सन्नद्धश्चास्म्यहं सम्प्रति ।

श्री सेनः रामजी श्यामजी च —(सहर्षम्) वयमपि भवतः सध्र्यंचो भविष्यामोऽधुना ।

(द्राक्पत्रहारकः प्रविश्य पत्रं प्रयच्छति)

जार्जिना —(पत्रं गृहीत्वा दृष्ट्वा च) एतत्तु श्रीमतो डीन महोदयस्यैव पत्रम् । नूनं तेन तत्कालमाहूतः स्यान्मे भर्ता लन्दन नगरं, भारत प्रस्थानाय ।

मूलरः —(सहर्षम्) पठतु, तावत् । किं लिखति तत्रभवान् ?

जार्जिना —(पत्रं वाचयित्वा सोद्वेगम्) हन्त ! सर्वमेव विपरीतं वृत्तम् ।

श्री सेनः —(साश्चर्यम्) किं जातम् ?

मूलरः —(पत्रं गृहीत्वा पठित्वा च) अहो ! 'प्रिंस आफ वेल्स महोदयस्य राजकीय भारतयात्राया कोऽपि वैदेशिकः सम्मिलितुं नार्हतीति' व्यपदिश्य केनापि विघ्नसन्तोषिनाधिकारिणा मम नाम सूचीतो निष्कासितमिति सखेदं सूचयति तत्रभवान् स्टेनले महाभागः । अथवैतत्तु दृश्यत एव—

संकीर्णता तु लोकानां राष्ट्रवर्गमतादिजा ।
विधत्ते प्रत्यवायं हि मानवोन्नति साधने ।२।

परं भवद्भिः नात्र खेदः कार्यः । यतो हि—

अत्रागतैर्भवादृशैर्महानुभावैर्मित्राणां पत्राचारैः पत्रपत्रिकाभिः पुस्तकादिभिश्च भारतन्तु मया सम्यगवगतमेव । तत्र गत्वापि नाभविष्यन्मे भारतज्ञाने कापि वृद्धिः । अत्र स्थित एवाहं काशि

विश्वनाथघण्टाध्वनिं प्रत्यहं शृणोमि। तथापि—

भारतस्यांग्लदेशस्य सर्वेषां विदुषां तथा।
लाभ एवाभविष्यच्चेदगमिष्यं सुभारतम्॥३॥

सुता—(प्रविश्य)—तात! व्यत्यैति खल्वाहारवेला।

जार्जिना—जाते! विविधवार्ताव्यापृततया विस्मृता भोजनवेलाप्यद्य। सर्वैरधुना भोजनायोपस्थातव्यम्।

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे।)

तृतीयं दृश्यम्

स्थानम्—आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयस्य प्रांगणे मोक्षमूलरसद्म।

(ततः प्रविशति जार्जिनया सुतेन सुतया च सहितो मोक्षमूलरः)

मूलरः—प्रिये! भारतीयाः प्रतिदिनमागत्यास्माननुगृह्णन्तीति हर्षस्य विषयः। परमद्य तु महोत्सव एव भविष्यति।

जार्जिना—भवता सह प्रत्येको दिवस उत्सव एवास्ति मे…

मूलरः—अद्य खलु श्रीस्वामिविवेकानन्दपादा मे निमन्त्रणमनुरुन्धाना लन्दनतोऽस्माकं गृहं पावयितुमागमिष्यन्ति।

जार्जिना—परममेतत्सौभाग्यमस्माकम्।

मूलरः—(विलोक्य) स्टर्डीमहोदयेनानुगम्यमानाः स्वामिपादा आगच्छन्त्येव, तत्सभाजयाम।

(अग्रे गत्वा, सप्रश्रयम्)

रामकृष्णस्य सच्छिष्या विवेकानन्दस्वामिनः।
कुटीरमद्य मे प्राप्ताः कृतकृत्योऽस्मि साम्प्रतम्॥४॥

जार्जिना—

वेदवेदान्तसन्देशं श्रावयन्तं जगत्त्रयम्।
जङ्गमं भारतं वन्दे विवेकानन्दरूपिणम्॥५॥

विवेकानन्दः—ॐ नमोनारायणाय । कल्याणमस्तु । (जार्जिनां विलोक्य) पुण्यशीले ! महदेव तपस्तप्तं भवत्या पूर्वजन्मनि ।

जार्जिना—महात्मन् ! न केवलं पूर्वजन्मन्यपित्वस्मिञ्जन्मन्यपि षड् वर्षाणि प्रतीक्षाजनिततापं तप्त्वैव…

मूलरः—(सस्मितम्) आवयोरुद्वाहेनैकसूत्रता जातेति वाक्यशेषः ।

(सर्वे हसन्ति)

विवेकानन्दः—वेदज्ञवर ! भवता स्वयौवनारम्भे त्रयोविंशतितमे वर्षे सायणभाष्यसहितस्य ऋग्वेदस्य सम्पादनं मुद्रापणञ्चारब्धम् । तच्च एकोनपञ्चाशत्तमे वर्षे समाप्तिमगात् । इत्यहं जानामि ।

मूलरः—स्वामिपादा ! अपि च चरमे वयसि विद्यमानस्य मेऽधुना नास्ति तथाविधा शक्तिस्तथापि—

प्रकाशनाय वेदस्य रम्यं संस्करणं नवम् ।
विजयनगराधीशः प्रायच्छत्पुष्कलं धनम् ।।६।।

अतएवाधुना पुनः सम्यक् सम्पाद्य संशोध्य च विशालाकार-पृष्ठानां खण्डचतुष्टयेन ससायणभाष्यस्य ऋग्वेदस्य द्वितीय-संस्करणस्य प्रकाशनमारब्धम् ।

विवेकानन्दः—पूर्वं विजयनगरस्यैव सम्राजा कृष्णराजद्वितीयेनाचार्यः सायणः ऋग्वेदस्य भाष्यनिर्माणायाधुना च तस्यैव विजयनगर-स्यमहाराजेन सायणभाष्यस्य सुरम्यरूपेण पुनः प्रकाशनाय भवांश्च प्रेरित इति तु युज्यत एव ।

मूलरः—अथ चानेन विजयनगरमहाराजानुदानेन—

उदाराः कर्मशूराश्च वाक्शूरा न हि केवलम् ।
विद्यन्ते भारतीया हि ज्ञातं सर्वैर्नैर्जरिह ।।७।।

स्टर्डी—सायणभाष्यसहितस्य ऋग्वेदस्य द्वितीयसंस्करणस्य प्रकाशनायै-केन भारतीयेन विजयनगरमहाराजेन द्रव्यं दत्तमिति तु युज्यते । परमस्य प्रथमसंस्करणस्य प्रकाशनायेस्टेण्डिया कम्पनी कथं प्रावर्तत ? इत्यस्तिजिज्ञासितम् ।

मूलरः —सम्यक् पृष्टम् ।

सायणभाष्यस्य प्रकाशनाय श्रीबर्नूफमहोदयेन मया चानेकत्र प्रयतितम् । श्रीमताचार्यंवॉथलिंग्कमहोदयेन सूचितं यत् सः पिटसवर्गं अकादमीतः ससायण-भाष्यं ऋग्वेदं प्रकाशयितुमुद्यतः, परन्तु मम नाम्ना सह तस्यापि नाम सम्पादकरूपेण प्रकाशयिष्यते । तच्च मया न स्वीकृतम् । श्रीमता वॉप्पमहोदयेनापि बर्लिनतः सायणभाष्यप्रकाशनायोत्साहः प्रदर्शितः । परं तेन लिखितं यत् सम्पूर्णोभाष्यस्तु बृहदाकारोऽस्ति । तस्य संक्षेपो विधातव्यः । मयैतदपि न स्वीकृतम् । तदैवाहमिण्डिया-हाउस-स्थितानां भाष्यपाण्डुलिपिनामध्ययनाथ लन्दनमगच्छम् । तत्रांग्लदेशस्थः प्रशियाराजदूतः परमःप्रभविष्णुः सुगृहीतनामधेयो मम पितुर्मित्रं तेनैव क्रमेण च ममापि परिचितः बुन्शेन महाभागस्तदा लन्दन एवासीत् ।

स्टर्डी —एवमेवम् ।

मूलरः —सायणभाष्यस्य प्रकाशनस्य मम योजनां श्रुत्वासौ महाभागो मुमुदेतराम् । 'कम्पनी व्यतिरिक्तं केनचिदन्यदेशीयेन सर्वकारेण भारतस्यायं गौरवग्रन्थश्चेत् प्रकाशितः स्यात्तदा कम्पनीकृते लज्जाया एव विषयोऽभविष्यदिति' कृत्वा प्रेरिताः श्रीबुन्शेन महाभागेन कम्पनीनिदेशकाः योजनां मे कार्यरूपे परिणमयितुम् । समारब्धे भाष्यप्रकाशनकार्ये च केवलं द्विवारं वर्षद्वयस्याभूद्व्यवधानम् ।

स्टर्डी —को व्याघातो जातः ?

मूलरः —प्रथमं भारते सैन्यविद्रोहवशादीस्टेण्डियाकम्पन्यधिकारिणो भाष्यप्रतिलिपिनां प्रेषणेऽसमर्था अभवन् । एकदा च जाते पोतभंगे भारतादानीयमानाः पाण्डुलिपयः सागरसाज्जाताः ।

जार्जिना —तदेवम्—

पञ्चविंशति वर्षाणि तद्गतेनान्तरात्मना ।
अतन्द्रितेन मे भर्त्रा ऋग्वेदोऽभूत् प्रकाशितः ॥८॥

स्टर्डी —रुचिरा साहसिका सुदीर्घकालव्यापिनी चैषा वेदकथा ।

विवेकानन्दः —सत्यम्—

एषा वेदकथा नूनमद्भुता सरसा नवा ।
श्रावं-श्रावं वेदवृत्तं जायते पुलकोद्गमः ॥९॥

जार्जिना —अनेन मम स्वामिना तु लोकमान्य तिलकायापि ऋग्वेदस्य खण्डषट्कमुपहाररूपेण प्रेषितम् ।

मूलरः—अद्भुतं खलु तिलकस्य पाण्डित्यम् । तस्य वेदकाल-निर्णायिकां ओरायन मृगशीर्ष (orian) इति नाम्ना विख्यातां लघीयसीं पुस्तिकामवलोक्य जाता मे मनसि श्रद्धा तस्मै विद्वद्वराय ।

जार्जिना —अथ च पत्रपत्रिकासु लेखजातं लिखित्वा इल्बर्ट-विधेयकस्यापि भूयसा प्रयत्नेन समर्थनं विहितमनेन मे स्वामिना । यद्यपि सर्वैरांग्लैर्विधेयकस्यास्य प्रबलो विरोधः कृतः ।

मूलरः —भारते स्थितवतामांग्लाधिकारिणामभियोगश्रवणाधिकारोऽधिगतो भारतीयन्यायाधीशैरनेनेल्बर्ट विधेयकेन ।

विवेकानन्दः —विद्वद्वर ! 'भारतमस्मान् किमुपदिशती'ति पुस्तकं भवतो भारतभक्त्याद्यन्तमाप्लावितं वर्तते । तदधुना भवान् भारतं कदागमिष्यति ?

मूलरः —स्वामिमहोदय ! अत्र विषये एतदेवास्मिवक्तुकामः—

वाराणस्यां निवासश्च गङ्गाम्भसि निमज्जनम् ।
वेदवेदान्तपाठश्च प्रियमेतत् त्रयं मम ॥१०॥

अथ च (सगद्गदम्)

भूयो नात्रागमिष्यामि यास्यामि यदि भारतम् ।
तत्रैव दाहसंस्कारः कर्तव्यो मे भवादृशैः ॥११॥

स्यान्नाम यावत् कानिचिन्नवीनानि पुस्तकानि कक्षान्तरात् समादायागच्छामि, तावदेतत्पुस्तकजातमवलोकनीयमत्र-भवद्भ्याम् । (इति प्रस्थितः)

स्टर्डी—पुस्तकप्रचय एषो मोक्षमूलरविरचितः सम्पादितो वा । यथाहि—एतदस्ति मोक्षमूलरसम्पादितं ऋग्वेदखण्डषट्कम् । अयञ्चास्यैव द्वितीयसंस्करणस्य प्रथमः खण्डः । एषः पुरातन संस्कृत साहित्येतिहास एतच्च संस्कृतव्याकरणम् । एतत्सानुवादं

सटिप्पणञ्च ऋग्वेदप्रातिशाख्यम्। एतानि च सेक्रेड बुक्स आफ ईस्ट इत्याख्यग्रन्थमालाया पञ्चाशत्खण्डानि। एतच्च चिप्स फ्राम जर्मन वर्कशॉप इत्याख्यं लेख-संकलनम्। ग्लासगो विश्वविद्यालये गिफ्फोर्ड व्याख्यान मालायां प्रदत्तानां भाषणानां पुस्तकरूपेणमुद्रितं एन्थ्रापोलोजिकल रिलीजन, फिज़ीकल रिलीजन इत्याख्यं खण्डत्रयन् एषा च अस्य महानुभावस्यात्मकथा। एतच्च आई० सी० एस० पदेनियुक्तानां भारतीयशासकपदं गृहीतुं जिगमिषुणामांग्लाधिकारिणां प्रबोधनाय भारतस्य वास्तविकरूपस्य परिचयप्रदानाय च प्रदत्तानां व्याख्यानानां इण्डिया ह्वाट् इट केन टीच अस इति नाम्ना प्रकाशितं संकलनम्। एतच्च दी वेदान्त फिलॉसफी नामकं विख्यातं पुस्तकम्।

विवेकानन्दः—मोक्षमूलरस्य तु समस्तमेव जीवनं संस्कृतानुरागमनुकरणीयाञ्च भारतभक्ति व्यनक्ति। यादृशेन भारतप्रेम्णाप्लावितोऽयं तस्य शतांशोऽप्यस्माभिर्लब्धः स्यात्। अपरा विद्यया परां विद्यामधिजिगमिषतोऽस्योपनिषत्तत्त्वज्ञस्य वेदविदुष आवासं प्राप्यैवमनुभवामि यद् वसिष्ठस्यारुन्धतेश्चाश्रमपदमेवागतोऽहमधुना।

स्टर्डी—मयाप्येवमेवानुभूयते।

विवेकानन्दः—स्टर्डीमहाभाग! दृष्टं भवद्भिर्भारतागमनस्य चर्चायामुपस्थितायां मोक्षमूलरस्य नेत्रद्वयमश्रुसिक्तं जातम्। नूनमनेन पूर्वजन्मनि केनापि पण्डितेन भाव्यम्ः—

"तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि।"

मूलरः—(प्रविश्य) अहो! कालिदासः स्मर्यते—

"रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।"

स्टर्डीमोक्षमूलरौ—तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि।

जार्जिना—स्टर्डीमहोदयोऽपि संस्कृते प्राविण्यं भजते?

स्टर्डी—अथ किम्। मया भारत एवाधीता संस्कृत भाषा। स्वामिपादानां सान्निध्येन च समृद्धतरं जातं मे संस्कृतज्ञानमधुना।

विवेकानन्दः—महाभाग! अद्यत्वे खलु विश्वस्मिन्नपि विश्वे पूज्यन्ते मे गुरुवः श्रीपरमहंसपादाः।

मूलरः—युज्यत एवैतद्। यतो हि—

रामकृष्णं महात्मानं प्रत्यक्षं धर्मविग्रहम्।
विहाय पुरुषः कोऽन्यः पूजनीयो भवेदिह ॥१२॥

अथ च एतदस्ति मे नवीनं प्रियञ्च पुस्तकम्, पश्यन्तु स्वामिपादाः।

विवेकानन्दः—(विलोक्य) अहो! एतत्तु मम गुरुवर्य पूज्य परमहंसपादानां भवता लिखितं जीवनचरितम्। सुतरां प्रीतोऽस्म्यनेनाहम्। महानुभाव! किमत्रभवते प्रत्युपकर्वाणि?

मूलरः—स्वामिन्! लब्धं महामहिम्नो जर्मनसम्राजो महामान्यायाः सम्राज्ञीविक्टोरियायाश्च सर्वोच्चमलंकरणम्। अधिगत प्रीवीकौंसिलस्य सदस्यता। अर्जितं प्रभूतं यशः। प्राप्तश्च भारतीयविदुषां भवादृशाणां महात्मनाञ्चानिन्द्यं प्रेमा। सर्वमेवाधिगतं भगवत्प्रसादात्। किमतः परं स्यात्। तथापि यदि वाग्देवता प्रसीदति तदा कालिदासानुगामि मे वचनमस्तु—

भरतवाक्यम्

प्रवर्धतां भरतभुवोऽत्र गौरवं सरस्वती श्रुतिमहती महीयताम्।
बुधोत्तमो गुणगणगौरवादृतः समस्तविश्वहितकरः प्रमोदताम् ॥

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इति तृतीयोऽङ्कः

समाप्तञ्चेदं मोक्षमूलरवैदुष्यं नाम नाटकम्

मोक्षमूलरवैदुष्यम्

[नाटक का हिन्दी अनुवाद]

पहला अंक

विद्या-वेदवाणी ब्राह्मण अर्थात् वेदज्ञ विद्वान् के पास आयी और बोली—निरन्तर स्वाध्याय व कुल-परम्परा में पठन-पाठन के द्वारा तू मेरी सदा रक्षा करते रहना, क्योंकि तेरी निधि तो मैं ही हूं। तू मुझे कामी, कुटिल, कदाचारी और ईर्ष्यालु के हाथ में मत पड़ने देना, ताकि मेरी शक्ति और सामर्थ्य सदा बनी रहे।

(मन्त्र के उत्तरार्ध की ध्वनि धीरे-धीरे मद्धिम पड़ती है
और ये श्लोक सुनाई देने लगते हैं)

वाक् और अर्थ का वर देने वाली, रम्य इसीलिए नित्य नवीन तथा वाणी और अर्थ में ही जिसका प्रत्यक्ष रूप प्रकट हो रहा है अथवा जो वाक् और अर्थ या शब्दार्थ की जीती-जागती मूर्ति है, जो प्रकाशस्वरूप है, या भारोपीय भाषाएं ही जिसका स्वरूप हैं, वह भव्य भारती सज्जनों के लिए सदा श्रेयस्करी हो ॥ १ ॥

जिसने यूरोप के लोगों को, वहां के सम्राटों-सम्राज्ञियों, राजाओं-राजपरिवारों तथा राज्याधिकारियों को भारत के (उदात्त) चरित्र और यहां की प्रज्ञा से परिचित करवाया ॥ २ ॥

जिसनें सायण भाष्य के साथ सम्पूर्ण ऋग्वेद प्रकाशित किया, आज सारे विश्व में उस मोक्षमूलर भट्ट का यश फैल रहा है ॥ ३ ॥

(इस नान्दी-मंगलाचरण-के बाद सूत्रधार
और नटी का प्रवेश)

सूत्रधार—आर्ये ! सुप्रभातम्।

नटी—सुप्रभातम्, नाट्यविशारद ! यह क्या पुस्तक है ? (पुस्तक को देखकर) वाह, आजकल महात्माजी की आत्मकथा पढ़ी जा रही है।

सूत्रधार—क्यों नहीं, पूज्य बापू ने अपनी इस आत्मकथा में मेक्समूलर की एक पुस्तक की विशेषरूप से चर्चा की है। महात्माजी ने लिखा है कि अफ्रीका में रहते हुए उन दिनों मैंने "भारत से हम क्या सीखें" नामक मेक्समूलर

की पुस्तक बड़े चाव और उल्लास के साथ पढ़ी थी।

नटी—और हां—

मैंने भी 'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मेरे उस अधिकार को कोई नहीं छीन सकता', इस महामन्त्र के उद्घोषक लोकमान्य तिलक के जीवन में पढ़ा है कि मेक्समूलर के आवेदन करने पर सम्राज्ञी विक्टोरिया ने उन्हें (लोकमान्य तिलक को) जेल से छोड़ देने की आज्ञा प्रचारित की थी ॥१४॥

सूत्रधार—हां, याद आया, उसी महाप्राण मोक्षमूलर भट्ट के जीवन का परिचायक 'मोक्षमूलर वैदुष्यम्' नामक भवानीशंकर त्रिवेदी का रचा हुआ नया नाटक हम आज प्रस्तुत करने जा रहे हैं। तो सब कलाकार तैयार हो जाएं।

(सभा की कानाफूसी के बीच वेदमन्त्र की-सी ध्वनि सुनाई देती है।)

हैं, यह क्या, मेरे निवेदन करते-करते ही यह कैसी ध्वनि सुनायी देने लगी। (कान लगाकर) हां, समझ गया—यह तो ग्रामोफोन बनाने वाली कंपनी की इस प्रार्थना पर कि एडीसन के इस नये आविष्कार के द्वारा हम सबसे पहले आपके सारे विश्व को उद्बोधन देनेवाले वचनों को ही रिकार्ड करना चाहते हैं, स्वयं मोक्षमूलर वेदमन्त्र पढ़ रहे हैं ॥५-६॥

(इति प्रस्तावना)

पहला दृश्य

स्थान—ग्रामोफोन कम्पनी की ओर से लन्दन में आयोजित सभा। रेकार्डिंग उपकरण भी दिखायी पड़ते हैं।

(यन्त्र के सामने मोक्षमूलर—'ॐ अग्निमीळे' इत्यादि मन्त्र पढ़ रहे हैं।)

आयोजक—वेदज्ञवर, आज आपने हमारे ग्रामोफोन के लिए सर्वप्रथम वेदवाणी रिकार्ड करवायी। आपसे वेदमन्त्र सुनकर हम कृतकृत्य हुए।

मोक्ष : यह तो स्वाभाविक ही था, क्योंकि मेरा तो जीवन ही वेद के लिए समर्पित है और वेदमय है। इसीलिए मैंने आपके लिए सर्वप्रथम ऋग्वेद का यह प्रथम मन्त्र ही रिकार्ड करवाया ॥७॥

आयोजक—किन्तु हम चकित हैं कि आपने यूरोप में रहते हुए ही संस्कृत का ऐसा ज्ञान कैसे प्राप्त कर लिया।

मोक्ष—मैंने संस्कृत कैसे पढ़ी, यह तो प्रायः सभी लोग जानना चाहते हैं। वास्तव में लाइपजिग विश्वविद्यालय में स्नातक परीक्षा के त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम में प्रवेश लेते ही मेरे संस्कृत-अध्ययन का श्रीगणेश बड़े मजेदार ढंग से हुआ था।

दूसरा दृश्य

स्थान—लाइपजिग विश्वविद्यालय का परिसर।

(छात्र-छात्राएं बातचीत करते हुए घूम रहे हैं।)

एक—यह नया भाषाध्यापक ब्रोकहाउस हमेशा कोई न कोई बेतुकी बात कर देता है।

दो—देखें, आज क्या अनोखी बात बताता है।

तीन—(देखकर) अरे, वह तो आ भी गया।

एक—खूब रही, इस तीस साल के प्रोफेसर की शक्ल-सूरत और कपड़े तो देखो।

दो—क्या देखना है, सब भाषाध्यापक ऐसे ही होते हैं।

सब—नमस्ते !

ब्रोकहाउस—नमस्कार। चलो भई, क्लास में चलें।

एक—(धीरे-धीरे) इसकी क्लास में जाकर क्या होगा ?

दो—क्यों नहीं, आज भी कुछ जरूर कोई अनोखी बात कहेगा।

(ब्रोकहाउस के साथ विद्यार्थी कक्षा में आते हैं।)

ब्रोकहाउस—प्यारे छात्रो, आपको मालूम होना चाहिए कि भारत की एक भाषा है······

एक—वाह ! क्या कहने, भारत और उसकी भी कोई भाषा ?

ब्रोकहाउस—और उस भाषा का नाम है संस्कृत......

दो—हमें क्या, हुआ करे उसका कोई नाम !

ब्रोकहाउस—और वह संस्कृत भाषा हमारी ग्रीक लेटिन और गॉथिक जैसी भाषाओं से बिल्कुल मिलती-जुलती है। वास्तव में संस्कृत इनकी बड़ी बहिन है।

एक—(धीरे-धीरे) लगता है आज तो इसने कुछ ज्यादा ही पी रखी है।

ब्रोकहाउस—(स्वगत) ठीक ही तो कह रहा है यह, क्योंकि मैंने अमर भारती का ऐसा मधुपान कर लिया है जिसे चखकर इस धरती पर रहते हुए भी मनुष्य निर्जर—अजर और अमर—हो जाते हैं।

मूलर—(धीरे-धीरे) रुको, मैं पूछता हूं। (जोर से) महाशय, सुना जाता है कि भारत तो सपेरों का देश है, तो भला भारत की कोई भाषा हमारी ग्रीक और लेटिन के बराबर है, ऐसा कैसे हो सकता है।

ब्रोकहाउस—हाथ कंगन को आरसी क्या ! यह देखो, बर्लिन विश्वविद्यालय के संस्कृत के आचार्य फ्रान्त्स वॉप्प का लिखा भारत जर्मन भाषाओं का तुलनात्मक व्याकरण मेरे हाथ में ही है। इसे जरा पढ़ो तो सही।

मूलर—कौन पढ़े इस पोथे को !

ब्रोकहाउस—तो लो, मैं संस्कृत और ग्रीक के एक जैसे रूप लिखे देता हूं।

(ब्लैकबोर्ड पर लिखता है।)

संस्कृत—अस्ति स्तः सन्ति

ग्रीक— ... ...

एक—(हंसते हुए) जरा देखो तो, जिसकी लिपि ही ऐसी है, वह भाषा कैसी होगी।

मूलर—सचमुच, बड़े तमाशे की बात है। ठीक ही तो है—

'जैसे भारत के लोग वैसी उनकी लिपि' ऐसी अनोखी लिपि तो हमने पहले कभी नहीं देखी। देखो न, इन अक्षरों के सींग और पूंछ भी हैं ॥६॥

दो—वाह वाह ! क्या कहने अक्षर और वे भी सींग-पूंछवाले। यह भी खूब रही।

(सब हंसते हैं।)

ब्लोकहाउस—(कुछ चकित होकर) विद्यार्थियो, इसमें हंसने की क्या बात है। हां समझ गया, यह तुम्हारा दोष नहीं है। मैंने ही जल्दी में पहले-पहल देवनागरी में लिख दिया। तो लो, अब मैं रोमन में 'अस्' धातु के रूप लिखे देता हूं। देखो—

(चारों भाषाओं के रूप रोमन लिपि में लिखता है।)

ब्लोकहाउस—तो आप लोगों ने देख लिया। हैं न, चारों भाषाओं में एक जैसे रूप ? अब तो हुआ भरोसा ? मूलर ! तुम्हीं बताओ।

मूलर—सचमुच, संस्कृत तो ग्रीक और लेटिन से बिल्कुल मिलती-जुलती है। तब तो मैं भी संस्कृत पढ़ूंगा।

ब्लोकहाउस—अवश्य, अवश्य। प्रिय मूलर, मैं जानता हूं कि तुम गरीब हो, लेकिन परिश्रमी और मेधावी भी हो। ग्रीक और लेटिन तो तुमने पहले से ही पढ़ रखी हैं। और मैं इन भाषाओं के साथ तुलना करते हुए संस्कृत ऐसे पढ़ाऊंगा कि तुम कुछ ही दिनों में सीख जाओगे।

और हां, मैं तो यह भी समझता हूं कि एक दिन तुम्हारे ही कारण इस लाइपज़िग विश्वविद्यालय का नाम रोशन होगा।

सब—गुरुजी, हम भी आप से संस्कृत पढ़ेंगे। अब तो संस्कृत जरूर पढ़ेंगे।

(कक्षा की समाप्ति के साथ
सभी चले जाते हैं।)

तीसरा दृश्य

स्थान—जर्मनी के डेस्साउ नगर में मेक्समूलर की गृह-वाटिका।

(मूलर त्वामालिख्य···आदि श्लोक सस्वर पढ़ता है।)

अग्रजा—भैय्या, तुम क्या गा रहे हो ?

मूलर—दीदी, आसमान में घिरी घटाएं देखकर मेरा मन मेघदूत पढ़ने को हो आया। देखो तो हमारे यहां ये कैसे ठिठुरे-से एक सरीखे बादल हैं।

सूरज की किरणें जिस पर छितरा रही हों, ऐसे सुरमे के पहाड़ से लगने वाले नीलकमल-मनोहर कालिदास के बादलों का तो कहना ही क्या.! ठीक तो है—

जिस पर सूरज की तिरछी किरणें पड़ रही हों, ऐसे सजल बादल, या कालिदास के शब्दों में 'वल्मीक' के विना भला रत्नों के ढेर के जैसा जगमगाता इन्द्रधनुष कैसे दिख सकता है ॥१०॥

अग्रजा—सचमुच, संस्कृत बड़ी प्यारी भाषा है। एक बार फिर सुना तो···

मूलर—दीदी, तुम कहो तो एक बार क्या दस बार सुना दूं। (त्वामालिख्य··· आदि श्लोक फिर पढ़ता है।)

अग्रजा—काश ! मैं इसका अर्थ भी समझ पाती।

मूलर—दीदी, यही सोचकर तो मैंने कालिदास के इस गीतिकाव्य 'मेघदूत' का जर्मन भाषा में पद्यानुवाद करना प्रारम्भ कर दिया है।

अग्रजा—बहुत खूब, तुमने मेघदूत का पद्यानुवाद करना शुरू कर दिया, यह बहुत अच्छा किया। यूं संस्कृत और जर्मन ये दोनों भाषाएं मिलती-जुलती सी हैं।

लर—तुम ठीक, कह रही हो। इन दोनों भाषाओं में समानता ही नहीं एकात्मता भी है। (यहां मूलर संस्कृत और जर्मन भाषा के कुछ शब्द बताता है। और कहता है कि इस प्रकार संस्कृत और जर्मन आदि भाषाओं की इस एकरूपता के कारण ही मैं इतना जल्दी संस्कृत पढ़ गया।)

अग्रजा—अब तो मेरे मन में भी संस्कृत सीखने की ललक जाग उठी।

मूलर—एक बात और सुन···

अग्रजा—मैं क्या सुनूं, तू मेरी बात सुन और सुनकर उस पर कुछ ध्यान दे।

मूलर—बता क्या कहना चाहती है।

अग्रजा—भैया, तुमसे क्या छिपा है। वैधव्य के असह्य दुःख को सहकर भी हमारी मां ने बचपन से लेकर आज तक हमें खूब पढ़ाया-लिखाया और सब तरह से सुखी रखा। और यह भी कि यहां के ड्यूक से जो नाम मात्र की पेंशन मिल रही है, उससे और हमेशा प्रथम रहने के कारण तुम्हें मिलने वाली छात्र-वृत्ति से अपना अब तक गुजारा चलता रहा। लेकिन अब माताजी चाहती हैं···(देखकर) लो, वह तो इधर ही आ रही हैं।

मूलर—(गद्गद् होकर) मां ! देख, मेरी यह पुस्तक !

माता—बेटे, तेरी एक पुस्तक को क्या देखूं ? तेरी तो बहुत-सी पुस्तकें···

मूलर—भगवान् करे तेरी बात सच हो, मां। यह तो संस्कृत के हितोपदेश का मेरा लिखा जर्मन अनुवाद है। यह आज ही छपकर आया है। इसका यह श्लोक मुझे बहुत अच्छा लगता है। सुन मां, सुन—

जिसका मन सन्तोषी है, समझ लो कि उसे सब कुछ मिल गया। पांव में जूता पहने हुए व्यक्ति के लिए तो सारी धरती पर चमड़ा मढ़ा हुआ है।

(खुशामद के लहजे में) मेरी मीठी-मीठी मां ! अब मैं चाहता हूं···

माता—तू जो चाहता है सो मैं नहीं जानती, बेटे ! पर मैं जो चाहती हूं, सो सुन। अब तू पढ़-लिखकर लायक और जवान हो गया है। इसलिए कहीं अध्यापक लग जा, ताकि अपने घर की गरीबी मिटे।

मूलर—मां, तेरी बात तो ठीक है, मैं कहीं अध्यापक बनकर अपना और तुम दोनों का पेट पाल लूंगा, पर मां, तब मेरी संस्कृत का क्या होगा ?

माता—तेरी संस्कृत से मुझे क्या ! अब तुझे चाहिए···

मूलर—मां, तुझे तो मालूम ही है कि लाइपज़िग विश्वविद्यालय से पी-एच. डी. की स्नातक उपाधि मिलने के बाद मैं संस्कृत और तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के आचार्य श्री फ्रान्त्स बॉप्प से आगे और संस्कृत पढ़ने के लिए उनके पास बर्लिन चला गया था। वहीं मैंने सोचा कि अब मुझे पेरिस विश्वविद्यालय के विख्यात वेद-विद्वान् श्री बर्नूफ के पास जाकर अपने संस्कृत-ज्ञान को और बढ़ाना चाहिये। तेरा आशीर्वाद लेने के लिए ही मैं यहां आया हूं। अब तू आज्ञा दे दे, तो मैं पेरिस चला जाऊं।

माता—पुत्र, यदि तेरी यही अभिलाषा है तो मेरा भी निर्णय सुन—

मूलर—(स्वगत) देखें मां क्या कहती हैं। (प्रकट) बता मां, बता। तेरी आज्ञा मेरे सिर माथे।

माता—तेरा ऐसा उत्कट संस्कृत-प्रेम देखकर मैंने भी फैसला कर लिया है। सुन बेटा, तेरी संस्कृत पढ़ाई में मैं रुकावट नहीं बनूंगी। ले, यह थोड़ा-सा धन। भगवान् करे तेरी इच्छा पूरी हो ॥११॥

(धन की पोटली उसे सौंपना चाहती है)

मूलर—(खुशी से) सचमुच मां ! रूप की तरह तेरा हृदय भी बहुत सुन्दर और कोमल है। पर यह तो बता कि तुझे यह धन मिला कहां से ?

माता—यह छोटी-सी धनराशि तेरे पिताजी छोड़ गये थे। इसे मैंने आज तक बचाये रखा। आज इसके सदुपयोग का मौका आ गया है, यही सोचकर यह धरोहर अब तुझे सौंप रही हूं। ले रख, इससे तेरा कुछ काम चल जाएगा।

मूलर—(गद्‌गद् होकर) अहा, मेरी कृपालु स्नेहमयी माता! (कहते-कहते उसके पैरों में गिर पड़ता है।)

माता—उठ बेटे! उठ (उसे उठाकर गले लगा लेती है) पुत्र, मेरे जीवन का सहारा तू ही है, इसलिए तुझे परदेस भेजने को मन मानता नहीं, तो भी अब तू पेरिस जाने की तैयारी में जुट जा। और हां, सुन, वहां जाकर आचार्य बर्नूफ का काम मन लगाकर करना और यह भी कि अपना लक्ष्य (संस्कृत सेवा) सदा ध्यान में रहे। बेटा, तुझे खूब यश मिले और प्रेय (सांसारिक सुख) तथा श्रेय (पारलौकिक कल्याण) भी तुझे सुलभ हों। यही तुझे मेरा आशीर्वाद है ॥१२॥

मूलर—भगवान् करे तेरा यह आशीर्वाद सफल हो, क्योंकि—

तेरा यह आशीर्वाद मेरे जीवन का सदा पाथेय बना रहेगा ॥१३॥

तो मां अब मुझे पेरिस के लिए प्रस्थान करने की अनुमति दे। तेरे चरणों में प्रणाम करता हूं और दीदी तुझे भी।

दोनों—बेटे, तेरा (जीवन का) मार्ग कल्याणकारी और सुखमय हो।

(सबका प्रस्थान)

पहला अङ्क समाप्त

दूसरा अंक

पहला दृश्य

स्थान—पेरिस में आचार्य वर्नूफ के घर का आंगन।

(मेक्समूलर और रूडोल्फ रॉथ का प्रवेश)

रॉथ—मूलर, आज तुम वहुत खुश दिखते हो।

मूलर—मित्र, ऋग्वेद पर आचार्य महोदय का प्रवचन सुन-सुनकर मैं इतना आनन्दमग्न हो गया हूं कि अव मुझे पैसे की कमी या भूख-प्यास की कुछ परवाह नहीं रही।

रॉथ—अच्छा, तो यह बात है।

मूलर—ईश, कठ और केन ये तीन उपनिषदें मैंने पढ़ ली थीं। प्रसिद्ध जर्मन दार्शनिक शिलर के लिए केनोपनिषद् का जर्मन अनुवाद भी किया था। इसलिए कल जब आचार्य ने उपनिषदों के वारे में दो घण्टे तक प्रवचन किया तो उसे सुनकर मैं वहुत खुश हुआ। किन्तु प्रवचन की समाप्ति पर आचार्य के 'किन्तु' कहने पर मेरे मन में आया कि क्रिश्चियन होने के नाते अब कहीं वर्नूफ किसी यूनानी या दूसरे यूरोपियन दार्शनिक के निष्कर्षों को उपनिषदों से भी वढ़कर न बता दें। तब आचार्य कई क्षणों तक ध्यानमग्न रहने के बाद वोले—

'वेद, अहा ! वेद सचमुच अनिर्वचनीय हैं'

मैंने तो स्नातक कक्षाओं में ऋग्वेद और अथर्ववेद के कुछ सूक्त पढ़ने के सिवाय आज तक वेद के दर्शन भी कहीं नहीं किए। तो मैं वेद की महिमा क्या समझता। पर, गुरुजी तो ठीक ही कहेंगे।

रॉथ—प्यारे मूलर, वेद तू कहां से देखेगा। ऋग्वेद के कुछ मण्डलों के सिवा वेद कहीं छपे हैं, जो तुझे देखने को मिल जाएंगे। हां, हमारे इस पेरिस विश्वविद्यालय में वेदों की पाण्डुलिपियां अवश्य हैं। और श्री वर्नूफ उनकी प्रतिलिपि तथा सम्पादन के काम में जुटे हुए हैं।

मूलर—हां भई, हमारे वेदज्ञ आचार्य वर्नूफ तो अवेस्ता के भी मर्मज्ञ हैं।

रॉथ—तुम ठीक कह रहे हो। जानते हो बर्नूफ ने दारा प्रथम, द्वितीय आदि प्राचीन ईरानी सम्राटों के दुर्बोध कीलाक्षर लिपि में लिखे गए प्राचीन अभिलेखों को भी पढ़ डाला। इससे आज यह भलीभांति सिद्ध हो गया है कि पुरानी फारसी भी संस्कृत का ही एक रूप हैं।

मूलर—सच कह रहे हो। मेरा तो कहना है—हमारे आचार्य वर्नूफ ने जो कुछ और जितना कुछ पढ़ लिया और वे जिस तरह रात-दिन काम में जुटे रहते हैं, हमें भी उनका अनुकरण करना चाहिए ॥१॥
(देखकर) लो, गोल्ड-स्टुकर भी आ पहुंचा। तो आओ, आचार्यजी के पास सब साथ-साथ चलें।

दूसरा दृश्य

(भोज-पत्र, ताड़-पत्र और नये-पुराने कागजों पर हस्तलिखित
ग्रंथों के ढेर से घिरे आचार्य वर्नूफ कुछ लिख रहे हैं।
उनकी तीन बेटियां पुस्तकों और कागज-पत्रों को
ठीक-ठाक करने के काम में जुटी हुई हैं।)

तीनों—प्रणाम आचार्यवर !

बर्नूफ—विद्वान् बनो। प्यारे छात्रो ! आप लोग तो जानते ही हो कि तप और स्वाध्याय में लीन भारत के वेदज्ञों ने हजारों वर्षों से वेद सुरक्षित रखे हुए हैं।

मूलर—गुरुवर ! पुस्तक या दूसरे किसी लिखित रूप के विना ही, एक-दूसरे से सुनकर कण्ठस्थ करते हुए वेदों को अब तक बचाए रखना सचमुच आश्चर्यजनक है। भारतीयों की श्रवण और स्मरण-शक्ति अपूर्व है।

बर्नूफ—तुम ठीक कह रहे हो, किन्तु वेदों की पाण्डुलिपियां तो भारत में भी दुर्लभ हैं। फिर भी यूरोपीय संस्कृतज्ञों के प्रयत्नों से इंगलैण्ड और फ्रांस की सरकारों ने भाष्य सहित वेदों की हस्तलिखित प्रतियां किसी न किसी तरह जुटा लीं और उन्हें अपने ग्रन्थालयों में रख छोड़ा। लेकिन यहां उनका उपयोग कौन करे। मुझे डर है कि ऐसी दशा में यहां भी वे दुर्लभ ग्रन्थ कहीं कीट-भोजन न बन जाएं।

मूलर—तो क्या इस मामले में हम कुछ नहीं कर सकते ?

बर्नूफ—क्यों नहीं, क्यों नहीं। अब हमें ऐसा करना चाहिए कि भाष्यसहित वेद छपकर फिर भारतीयों के हाथों में जा पहुंचे। और इसीलिए यह रूडोल्फ रॉथ अथर्ववेद और यजुर्वेद के काम में जुटा हुआ है। यह गोल्ड स्टुकर भी काम कर रहा है। (उन दोनों की ओर देखकर) अच्छा, तुम अपने काम में लग जाओ।

रॉथ और स्टुकर—जैसी गुरुजी की आज्ञा।

बर्नूफ—बेटे मूलर, तुम यहां सबसे छोटे और नये होकर भी बड़े बुद्धिमान् विद्यार्थी हो, इसलिए मैं चाहता हूं कि तुम्हारा जीवन वेद के लिए समर्पित हो जाए। इससे तुम मेरे काम में बहुत बड़े सहायक बन जाओगे।

मूलर—आपकी आज्ञा को शिरोधार्य कर मैं अपना जीवन वेद के लिए समर्पित करता हूं।

बर्नूफ—वत्स, तेरा देवनागरी लेख बहुत सुन्दर है, इसलिए सबसे पहले तू मेरे द्वारा सम्पादित ऋग्वेद-सायण-भाष्य की एक प्रतिलिपि तैयार करना शुरू कर दे। इसके लिए कुछ पारिश्रमिक भी तुझे मिलेगा। उससे तेरे नाश्ते का खर्च तो निकल ही जाएगा।

मूलर—गुरुजी, मैं तैयार हूं।

बर्नूफ—किन्तु वेदभाष्य की प्रतिलिपि का काम शुरू करने से पहले तुम्हें दो प्रतिज्ञाएं करनी होंगी।

मूलर—बताइये, गुरुजी !

बर्नूफ—पहले तो यह कि सायण भाष्य का सम्पादन करते हुए तुम कभी उसकी कोई एक पंक्ति भी—एक अक्षर भी छोड़ोगे नहीं। दूसरे यह कि मेरे द्वारा सम्पादित वेदभाष्य की नकल करते समय तुम धूम्रपान नहीं करोगे।

मूलर—मुझे गुरुजी की आज्ञा स्वीकार है। सायणभाष्य का सम्पादन करते हुए उसका एक अक्षर भी छूटने नहीं पाएगा। और आपके वेदभाष्य की प्रतिलिपि करते समय धूम्रपान नहीं करूंगा ॥२॥

बर्नूफ—तो फिर मैं भी चाहूंगा कि यथाशीघ्र तुम अपने आप वेदभाष्य का सम्पादन करने के योग्य बन जाओ। और हां, उसके बाद तुम्हें लन्दन जाना होगा। वहां इण्डिया हाउस के ग्रन्थालय में भी सायण-भाष्य की पाण्डुलिपियां हैं। शुद्ध और प्रामाणिक पाठ के निर्धारण के लिए तुम्हें वे भी

पढ़नी पड़ेंगी।

मूलर—आचार्यवर, यह तो ठीक है। पर क्षमा करें गुरुदेव, यह तो बहुत बड़ा काम है। इसके लिए जितना परिश्रम और समय चाहिए उससे कहीं अधिक धन की भी आवश्यकता पड़ेगी उसे छपवाने के लिए।

बर्नूफ—तुम ठीक कह रहे हो, पर मुझे आशा है कि तुम्हारे सभाष्य सम्पूर्ण ऋग्वेद को छपाने के लिए ईस्ट इण्डिया कम्पनी से तुम्हें अनुदान मिल ही जाएगा। अब हमें (वेदों के) स्वाध्याय, अर्थज्ञान, उन पर आचरण और उनके प्रचार के लिए कटिबद्ध हो जाना चाहिए।

मूलर—भगवान् करे आपके वचन सार्थक हों।

बर्नूफ—यह वेदाज्ञा सदा स्मरण रखनी होगी। (विद्या ह वै इत्यादि मन्त्र पढ़ते हैं।)

तीसरा दृश्य

स्थान—ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के परिसर में मोक्षमूलर का निवास स्थान।

(मेक्समूलर अपने कमरे में मेज के सामने (कुर्सी पर) बैठे हैं। मेज पर एक ओर ऋग्वेद के छपे हुए तीन खण्ड रखे हैं। दूसरी ओर कलम दवात आदि रखे हुए हैं और कई पाण्डुलिपियां तथा प्रूफ आदि के कागज पड़े हैं।)

मूलर—ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय का यह परिसर बड़ा ही रमणीय है। पेरिस से आने के बाद यहां रहते हुए मुझे बारह वर्ष हो गए। इस बीच मैंने यहां के प्रेस में सायणभाष्य सहित ऋग्वेद के चार मण्डल तीन खण्डों में छपवा दिए। (कुछ चिंतित होकर) किन्तु इस पांचवें मण्डल के सायण भाष्य की कई पंक्तियां बहुत दुर्बोध लगती हैं। मुझे उनके बारे में यहां के वेदविदाचार्य श्री विल्सन से···

विल्सन—(प्रविष्ट होकर) सुप्रभातम्, प्रिय मोक्षमूलर!

मूलर—(देखकर सहर्ष) सुप्रभातम्। अहो, मान्यवर विल्सन महोदय, आप तो स्मरण करते ही आ पहुंचे। यह मेरा अहोभाग्य है।

विल्सन—विद्वद्वर, सायणभाष्य के सम्पादन, शुद्धपाठ-निर्धारण और प्रूफ पढ़ने में आपको रात दिन जुटे देखकर मुझे बहुत खुशी होती है।

मूलर—इंग्लैंड में प्रशिया के राजदूत महामहिम श्री बुन्शेन महोदय के अथक प्रयत्न एवं आपके द्वारा उसके सम्पूर्ण समर्थन के फलस्वरूप ईस्ट इण्डिया कंपनी ने मेरे द्वारा सम्पादित ससायणभाष्य ऋग्वेद के प्रकाशन का भारी खर्चा उठाया है। और भारत से सम्पूर्ण सायणभाष्य की कई प्रतिलिपियां मंगवाने का भगीरथ प्रयत्न किया। यह सब उस प्रभु की कृपा से ही हो पाया है।

विल्सन—विद्या-वयोवृद्ध बुन्शेन महोदय का ईस्ट इण्डिया कम्पनी के निदेशकों पर बड़ा प्रभाव है। और उनका वेदानुराग भी सचमुच अनुकरणीय है।

मूलर—आपका कथन सर्वथा सत्य है, क्योंकि जब मैंने सायणभाष्य को छपाने के लिए उनसे निवेदन किया तो वे गद्गद् होकर कहने लगे, बेटे ! लगता है आज तुम्हारे रूप में मेरी जवानी के दिन फिर से लौट आए हैं, क्योंकि सम्पूर्ण ऋग्वेद के छपाने की बात उन दिनों मेरे मन में भी आई थी, किन्तु उन्हीं दिनों मेरा मन मिश्र की नई निकली अद्भुत सम्पत्ति की ओर खिंच गया और वहां की चकाचौंध से मेरा मन वेदविमुख हो गया।

विल्सन—सायणभाष्य के सम्पादन के लिए सचमुच आपने घोर तप किया है। मुझे मालूम है, पेरिस में सायणभाष्य की प्रतिलिपि करते हुए आपने रात-दिन एक कर दिए थे। और दो वर्ष तक—

थोड़े-बहुत भोजन या अल्पाहार से ही आप गुजारा चलाते रहे। कई बार तो ऐसा होता था कि केवल काफी और वह भी दूध व चीनी के बिना ही पीकर आपको रहना पड़ता था। आप वेद के काम में ऐसे तल्लीन हो जाते थे कि सारी रात लिखते हुए बीत जाती थी और तीसरी रात ही सोया करते थे॥३-४॥

मूलर—मुझ पर गुरुदेव श्री बर्नूफ की बड़ी कृपा थी···

विल्सन—और यहां भी तो आपने कोई कसर उठा नहीं रखी। जैसे कि ऑक्सफोर्ड प्रेस में वेदों के योग्य संस्कृत टाइप तो था नहीं, इसलिए आपने अपने हाथों से लिख-लिखकर वेदोपयोगी टाइप ढलवाया।

मूलर—और हां, आजकल तो भारत जाकर वाराणसी में ही शेष जीवन बिता देने की इच्छा मेरे मन में घर करती जा रही है। पर क्या करूं, मां तो

इसके लिए तैयार ही नहीं होती। पहले तो उसने लिख दिया 'आजकल भारत में अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोहाग्नि धधक रही है, तुझे मैं वहां कैसे जाने दूं।' अब तो वहां विद्रोह भी शान्त हो चुका है, इसलिए मैंने मां को फिर लिखा है कि 'मां भारत कोई इस धराधाम से बाहर तो है नहीं, और उस प्रभु की छत्रछाया से तो बिल्कुल बाहर नहीं। इसलिए तू चिन्ता मत कर।' देखें क्या उत्तर आता है।

आजकल तो मुझे इसी बात का ध्यान रहता है कि मेरे ऋग्वेद के तीन खण्ड भारत पहुंच चुके हैं। उन्हें देखकर वहां के विद्वानों की न जाने कैसी प्रतिक्रिया होगी।

विल्सन—प्रिय मित्र, सब ठीक ही होगा। अब तुम्हारे तप का समय समाप्त हो गया। आरंभ और यत्न के बल के बाद अब फलप्राप्ति की आशा बंधने लगी है।

श्रीमती किंग्सले—(प्रवेश कर) फल की प्राप्ति भी निश्चित हो चुकी है, अतः अब शीघ्र ही फल मिलनेवाला है। (यहां नाटक की पांच संधियों का भी निर्देश किया गया है।) ॥५॥

मूलर—(देखकर आश्चर्य और हर्ष के साथ) अहा, किंग्सले दम्पती ! सुप्रभातम्, सुप्रभातम्।

श्रीमती किंग्सले—सुप्रभातम्। विल्सन महोदय भी यहीं हैं।

मूलर—आज तो बड़ी कृपा की आप लोगों ने।

विल्सन—बहुत दिनों बाद दिखाई दिए आप लोग।

श्रीमती किंग्सले—(विल्सन के प्रति) आचार्यवर ! अपने आने का प्रयोजन भी बताती हूं। यह जानकर आपको खुशी होगी कि कई वर्ष तक सोच-विचार में पड़े रहने के बाद मेरे बड़े भैय्या श्रीमान् ग्रेम्फेल ने आपके इन वेदज्ञ मेक्समूलर से अपनी बेटी जार्जिना के विवाह की बात मान ली है।

विल्सन—मैडम, यह तो बड़ा ही शुभ समाचार दिया आज आपने। हमारे ये वेद-सर्वस्व मोक्षमूलर अकिञ्चन होकर भी सब सम्पत्तियों के निधान हैं। निष्काम वेद सेवा के फलस्वरूप सभी समृद्धियां इन्हें स्वतः प्राप्त हो जाएंगी।

श्री किंग्सले—यह हम भलीभांति जानते हैं।

श्रीमती किंग्सले—बधाई हो !

विल्सन—आपको भी बधाई हो।

(सबका प्रस्थान)

चौथा दृश्य

स्थान—वाराणसी का एक चौक।

(पृष्ठभूमि में श्री विश्वनाथजी की आरती में पढ़े जा रहे पुष्पांजलि के मन्त्र तथा घण्टा और नगाड़ों की ध्वनि सुनायी देती है।)

(वैदिक विद्वान् और एक शिक्षक का प्रवेश)

शिक्षक—सुनते हैं कि काशी में यूरोपियन विशेषकर जर्मनी के संस्कृत-पंडितों की शीघ्र ही एक नई कोलोनी बसने जा रही है।

वैदिक—वे लोग धन्य हैं। क्योंकि पूर्व पुण्यों से ही मोक्षार्थी मनुष्यों को काशिवास सुलभ हो पाता है ॥५॥

शिक्षक—आपका कहना तो ठीक ही है किन्तु आजकल तो—'पंडा सांड सीढ़ी और संन्यासी, इनसे बचे तो सेवे काशी' की कहावत के अनुसार काशिवास भी कष्टबहुल हो गया है। और यह भी कि श्रद्धालुओं को श्रद्धाहीन लोग, धर्मात्माओं को धूर्तजन तथा बेसमझ भोलेभाले लोगों को चतुर-चालाक लोग सदा मूंडते रहते हैं और तीर्थयात्री तीर्थों में जाकर अपना मुंडन करवाते हैं। या पंडे लोग भोलेभाले तीर्थयात्रियों को मूंड़ लेते हैं। (पहले दोनों विशेषण क्रमशः पंडा और तीर्थयात्रियों के लिए भी लागू हो सकते हैं।)

वैदिक—यह तो डोंडी पिट रही है। सुनें तो!

उद्घोषक—(नगाड़ा बजाने के बाद) सभी विद्वानों और जन-साधारण को सूचना दी जाती है कि आज सायं ५ बजे नगर के प्रमुख सभागार में इंग्लैण्ड निवासी जर्मन विद्वान् श्री मोक्षमूलर भट्ट के द्वारा सम्पादित सायणभाष्य सहित ऋग्वेद की प्रामाणिकता पर विचार करने के लिए एक विद्वत्सभा होगी। आप सब लोग समय पर वहां उपस्थित हों।

(अब्रह्मण्यम्, अब्रह्मण्यम् कहते हुए पंडा का प्रवेश)

वैदिक—अरे, 'अब्रह्मण्यम्' क्यों बोल रहे हो सुब्रह्मण्यम् बोलो।

पंडा—पण्डितजी, सुब्रह्मण्यम् तो मद्रास……

शिक्षक—(मुस्कराते हुए) सचमुच आप तो 'देवानां प्रिय' (मूर्ख) हैं।

पंडा—(सहर्ष) आप लोगों की कृपा है। किन्तु सब मेरे जैसे नहीं हैं।

वैदिक—बात तो सही कह रहे हो।

शिक्षक—अब्रह्मण्यम् और 'सुब्रह्मण्यम् का' अर्थ भी जानते हो?

पंडा—क्षमा करें वैदिकवर, इस घाट पर कई वार कोई बुरी वात होने पर मैंने आप जैसों को 'अब्रह्मण्यम्' 'अब्रह्मण्यम्' कहते सुना है। अर्थ से मुझे क्या लेना-देना।

वैदिक—अर्थदास होकर भी कहते हो, मुझे अर्थ से क्या लेना-देना। यह भी खूब रही।

पंडा—मेरे कहने का प्रयोजन यह है कि मुझे इन शब्दों का अर्थ ज्ञात नहीं है।

शिक्षक—तो सुनें, ब्रह्म या वेद के लिए जो हितकारक हो वह हुआ सुब्रह्मण्यम् और वेद के लिए जो अहित हो···

पंडा—वह हुआ 'अब्रह्मण्यम्'। अव मालूम हुआ।

वैदिक—अव वताओ तुमने अभी क्या बुरी वात देखी ?

पंडा—पण्डितजी, अभी आपने सुना नहीं, ये डोण्डी वाला क्या कह रहा था? इसने वताया कि हमारे अत्यन्त गुह्य ऋग्वेद को भी अव किसी क्रिश्चियन ने छाप डाला है। घोर कलियुग आ गया है पण्डितजी, आप ही सोचो इससे वढ़कर और बुरा क्या हो सकता है!

वैदिक—पंडाजी, इस पर तो हमें खुश होना चाहिए। अरे, जो सायणभाष्य अव तक दो-चार वैदिक कुलों के पास ही था, अव हमें भी उसके दर्शन हो जाएंगे। और अव तो वेदमन्त्रों का अर्थ भी हम समझ सकेंगे।

शिक्षक—किन्तु सात समुद्र पार के रहने वाले मोक्षमूलर को यह सायणभाष्य मिल कैसे गया? और उसे शुद्ध रूप से सम्पादित कर छपवा देना कोई खाला जी का घर है। इसके लिए तो वेद के प्रकाण्ड पाण्डित्य की आवश्यकता है। इसलिए मेरा मन तो मानता ही नहीं कि यूरोप में सायणभाष्य शुद्ध छप सकता है।

वैदिक—संस्कृत के वेदज्ञ यूरोपियन विद्वान् पहले भी रहे हैं और आज भी हैं। किन्तु मोक्षमूलर का नाम तो आज पहली वार सुन रहे हैं। उस नौसीखिए के हाथ में पड़कर सायणभाष्य की न जाने क्या गति हुई होगी।

शिक्षक—लो, सभा का समय भी हो गया। चलो वहां पहुंचे।

(सबका प्रस्थान)

पांचवां दृश्य

स्थान—वाराणसी में विद्वत्सभा।

(मंच पर कुछ प्रमुख वेदज्ञ विद्वानों से घिरे सभापति महोदय बैठे हैं। सभा में पण्डितों के परस्परालाप की ध्वनि सुनायी देती है।)

आयोजक—शान्ति-शान्ति ! अव सभा का कार्यक्रम आरम्भ होने जा रहा है। सवसे पहले श्रीमान् पण्डित शिवदासजी वैदिक मंगलाचरण करेंगे।

शिवदास—(ॐ अग्ने नय इत्यादि मन्त्र पढ़ते हैं। इस मन्त्र का अर्थ यह है)—हे सवको आगे ले जानेवाले हमारे नेता और मार्गदर्शक(अग्रे नयतीत्यग्निः) परमात्म देव ! हमें सुमार्ग से ले चलिये—सदा उन्नति की ओर अग्रसर कीजिए, ताकि हमारा सर्वविध कल्याण हो और हम भरपूर सुख समृद्धि के भागी वनें। हे देव ! आप से हमारा कोई कर्म छिपा नहीं है। आप हमारे प्रत्येक काम को जानते और देखते हैं। आप हमारी कुटिलताओं, वुराइयों और पापों से हमें संघर्ष करने की शक्ति प्रदान कीजिए ताकि हम उनसे वचे रहें। हे भगवन् ! हम आपको वार-वार प्रणाम करते हैं।

आयोजक—अव छात्रगण सरस्वती वन्दना करेंगे।

छात्रगण—'या कुन्देन्दुतुपार हारधवला' इत्यादि स्तुति-गान करते हैं।

आयोजक—आदरणीय सभापति महोदय और उपस्थित माननीय विद्वद्वृन्द ! आप लोगों को यह ज्ञात ही है कि श्रीमान् मोक्षमूलर भट्ट के द्वारा हाल ही में प्रकाशित सायणभाष्य-सहित ऋग्वेद के तीन खण्डों की प्रामाणिकता के वारे में निर्णय करने के लिए आज इस विद्वत्सभा का आयोजन किया गया है। तो मैं सवसे पहले इस ऋग्वेद के पहले खण्ड के मुखपृष्ठ पर संस्कृत भाषा और देवनागरी लिपि में जो छपा है, उसे पढ़कर सुनाता हूं। (पढ़ता है)

प्रत्येक खण्ड के प्रारम्भ में वेद की महिमा को व्यक्त करने वाली और भाष्य के विविध पाठों की परिचायक लम्वी-चौड़ी भूमिका भी दी गई है। भूमिका के प्रत्येक वाक्य से मोक्षमूलर की वेदों के प्रति श्रद्धा स्वतः प्रकट होती है।

अव आप लोगों में से कोई भी विद्वान् यहां मंच पर आकर इस ऋग्वेद का कोई भी पृष्ठ पढ़कर सुनाने की कृपा करें, ताकि सव लोग इसके सम्पादक श्री मोक्षमूलर भट्ट के पाण्डित्य और अपार

परिश्रम से परिचित हो जाएं और किसी के मन में कोई शंका न रहे।

(एक पण्डित उठकर पुस्तक का एक पृष्ठ पढ़कर सुनाता है।)

शिक्षक—(सुनकर) सचमुच यह तो सर्वथा शुद्ध है।

वैदिक—शुद्ध ही नहीं, अत्यन्त शुद्ध कहो।

शिक्षक—वास्तव में यह तो बड़े आश्चर्य और उतने ही हर्ष की भी बात है।

आयोजक—एक बड़ी बात यह कि भाष्य में आये हुए नाना ग्रन्थों के उद्धरणों को मूल-ग्रन्थ से मिलाकर उनके अध्याय, पाद, सूत्र, सूक्त या मन्त्रादि के पृथक्-पृथक् अंक भी स्पष्टरूप से जुटा दिये गए हैं। और यह भी कि मेक्समूलर ने 'मोक्षमूलर' के रूप में अपने नाम का जो संस्कृतीकरण किया है, वह भी हमें सर्वथा उपयुक्त और सार्थक लगा। क्योंकि—

संस्कृत में 'रा' धातु का अर्थ है देना और मोक्ष का मूल है वेद। तो 'मोक्षमूलर' का अर्थ हुआ वेद प्रदान करने वाला ॥७॥

सभापति—इसलिए काशी के हम सब पण्डित बड़े आदर और सम्मान के साथ यह घोषणा करते हैं कि मोक्षमूलर भट्ट द्वारा सम्पादित ऋग्वेद का सायण भाष्य सर्वथा शुद्ध है। और मोक्षमूलर भट्ट से यह प्रार्थना करते हैं कि वे इस प्रकार सारा वेद प्रकाशित कर सारे संस्कृत जगत् व भारत को उपकृत करें। विद्वत्सभा के इस निर्णय की एक प्रति मोक्ष-मूलर भट्ट को भी सादर भेजी जा रही है।

सभी—विश्वनाथ भगवान् की जय। हर हर महादेव।

(सब का प्रस्थान)

दूसरा अंक समाप्त

तीसरा अंक

पहला दृश्य

प्रतिहारी—आस्बोर्न राजमहल के सभी अधिकारी सावधान होकर सुनें। आज सन् १८६४ के जनवरी की छह तारीख को आप लोगों को सूचित किया जा रहा है कि रात्रि के आठ बजे भावी भारत-सम्राट् युवराज प्रिन्स आफ वेल्स तथा दूसरे सभी परिजनों के साथ महामहिमशालिनी महामान्या सम्राज्ञी विक्टोरिया भुक्तास्थान मण्डप (दरबारे खास) में श्रीमान् मोक्षमूलर भट्ट का व्याख्यान सुनने पधार रही हैं। इसलिए सब लोग सावधान हो आदरपूर्वक अपने-अपने स्थान पर खड़े रहें।

(परिजनों के साथ सम्राज्ञी विक्टोरिया का प्रवेश)

मोक्षमूलर—महामान्ये ! मैं सादर नमस्कार करता हूं।

विक्टोरिया—(नमस्कार स्वीकार करते हुए) प्रिय महोदय, हम आपका प्रवचन सुनने के लिए आज यहाँ आए हैं।

मोक्षमूलर—महामान्या सम्राज्ञी, आपने जो मुझे यह सुअवसर प्रदान किया उसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूं।

विक्टोरिया—तो आप अपने विचार प्रकट कीजिए।

मोक्षमूलर—महामान्ये सम्राज्ञी, माननीय युवराज महोदय और परिजनगण ! (ॐ अग्निमीडे इत्यादि मन्त्र पढ़ता है।) यह उस ऋग्वेद का पहला मन्त्र है, जिसके सायणभाष्य सहित सात मण्डल पहले ईस्ट इण्डिया कम्पनी और उसके बाद आपकी सरकार के उदार अनुदान के फलस्वरूप अब तक छप चुके हैं। कुछ ही वर्षों में सम्पूर्ण ऋग्वेद के छप जाने पर सारे विश्व की प्राचीनतम ही नहीं, अपितु समग्र आर्यजाति की श्रेष्ठतम और भारतीय आर्यों की पवित्रतम एक बहुत बड़ी रचना सुरक्षित हो जायेगी। मैं सबसे पहले परम-माननीया सम्राज्ञी के समक्ष यह सादर और सधन्यवाद विनम्र निवेदन करना चाहता हूं···

(इसी प्रकार व्याख्यान जारी रहता है।)

विक्टोरिया—महानुभाव ! आज आप ने ऋग्वेद और उसके सायण भाष्य की

महिमा के बारे में वहुत कुछ वताकर हमें आनन्द मग्न-कर दिया। आपने जो आज हमारी ग्रीक और लेटिन जैसी भाषाओं की तुलना संस्कृत के साथ कर दिखायी, उसे सुनकर हम चकित रह गये। महानुभाव, सब जानते हैं कि इधर दस वर्ष से हमने कभी किसी का व्याख्यान नहीं सुना था। आज दस वर्ष बाद दो घंटे तक आपका व्याख्यान सुनकर हम ऐसे तन्मय हुए कि अपने सदासंगी बुनने के काम को भी आज हम भूल बैठे। यद्यपि नियमानुसार आज भी ये सलाईयां और ऊन आदि यहां रखी हैं। आपके व्याख्यान से हमें इतना आनन्द आया कि हम चाहेंगे कि कल भी आपका व्याख्यान सुनें।

मोक्षमूलर—महामान्या सम्राज्ञी! आपने जो इस प्रकार मेरा उत्साह वढ़ाया उसके लिए मैं आपका अत्यन्त अनुगृहीत हूं।

अब मैं महामान्या का सादर विनतभाव से अभिवादन करता हूं। शुभ रात्रि।

विक्टोरिया—शुभरात्रि!

(सबका प्रस्थान)

दूसरा दृश्य

स्थान—आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के परिसर में मोक्षमूलर का भवन।

(पियानो बजाते हुए मोक्षमूलर और जार्जिना दिखाई देते हैं।)

जार्जिना—आप तो बड़ी प्यारी धुन बजा रहे हैं।

मूलर—प्रिये! मेरा पियानोवादन तुम्हारी संगीत-लहरी से और भी मनोहारी हो जाता है।

जार्जिना—संगीतकला में ऐसी प्रवीणता आपको कैसे प्राप्त हो गई?

मूलर—सुनते हैं, पूज्य पिताजी पियानो-प्रवीण थे और माताजी की संगीत-रुचि तो तुम्हें ज्ञात ही है।

जार्जिना—मैं तो सोच रही थी कि विवाह से पहले आपकी कोई···

मूलर—क्यों नहीं, वह प्रतिदिन मुझे विहार का अपूर्व सुख प्रदान किया करती थी। जानती हो वह कौन थी? वह थी मेरी प्यारी एक सुन्दर वडवा[1]।

---

१. 'वडवा' के घोड़ी और युवती ये दोनों अर्थ हैं।

जार्जिना—अहा ! सुन्दरी और युवती !

मूलर—नहीं, युवती नहीं, प्यारी घोड़ी ।

जार्जिना—(मुस्कराते हुए) आपने वात वदल दी ।

मूलर—नहीं तुम वात को कहीं का कहीं उड़ा ले गई ।

(केशवचन्द्र सेन का प्रवेश)

श्रीसेन—आप लोगों के आतिथ्य का आनन्द लेते हुए मुझे कई दिन हो गए। अव मैं वापिस भारत जाना चाहता हूं और हां···

(रामजी छवीलदास और श्यामजी कृष्ण वर्मा का प्रवेश)

रामजी श्यामजी—नमस्ते महाशय !

मूलर—सुप्रभातम् ।

श्यामजी—वाह ! ब्रह्म समाज के मान्य नेता केशवचन्द्र सेन भी यहीं विराज रहे हैं ।

श्रीसेन—मैं तो जव भी इंग्लैंड आता हूं, अधिकतर यहीं रहता हूं ।

जार्जिना—यह तो सेन महाशय का अपनापन है ।

मूलर—जार्जिने ! ये हैं रामजी छवीलदास ! आजकल कैंब्रिज विश्वविद्यालय में पढ़ रहे हैं और ये हैं श्यामजी कृष्ण वर्मा । बैरिस्टरी के लिए यहां आए हुए हैं । श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती के ये श्रेष्ठ शिष्य हैं । यहां भी संस्कृत का प्रचार करते रहते हैं, ये दोनों ।

श्यामजी—विद्वद्वर ! हमारे गुरुवर्य श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का आज ही मुझे एक पत्र मिला है । उसमें उन्होंने अपने रचित ऋग्वेद भाष्य के वारे में आपका अभिमत जानना चाहा है ।

जार्जिना—मासिक रूप से प्रकाशित स्वामीजी के ऋग्वेद-भाष्य के तो मेरे पतिदेव पहले से ही ग्राहक हैं । फिर भी मेरे पतिदेव के वारे में भारत में तरह-तरह की वातें···

रामजी—आप ठीक कह रही हैं । भारत में तो यहां तक प्रवाद फैलाया जा रहा है कि मोक्षमूलर के वेद छपाने का मूल उद्देश्य तो ईसाइयत का प्रचार करना ही है ।

श्रीसेन—भारत के मुट्ठीभर लोग कुछ भी कहते रहें। इसके विपरीत यह तथ्य विश्वविदित है कि विल्सन के स्वर्ग सिधार जाने के वाद 'मोक्षमूलर तो हिन्दू धर्म का समर्थक है, ईसाइयत का नहीं', यह धुआंधार प्रचार करके चर्च ने इन्हें ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के संस्कृत-आचार्य-पद पर निर्वाचित नहीं होने दिया और इनके प्रतिद्वन्द्वी मोनियर विलियम को अपना वहुमत प्रदान किया था।

मूलर—उसके वाद इस ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में ही मुझे तुलनात्मक भाषा-विज्ञान के आचार्य का पद दिया गया था, किन्तु यदि मैं उस पद पर वना रहता तो मेरी संस्कृत-सेवा में कुछ न कुछ तो वाधा आती ही।

एक सेवक दो स्वामियों की सेवा ठीक से नहीं कर पाता। वस इसीलिए मैंने तुलनात्मक भाषा विज्ञान के आचार्य का वह पद छोड़ दिया है ॥१॥

जार्जिना—(मुस्कराते हुए) एक और वात वताऊं? 'मोक्षमूलर की ईसाइयत में आस्था न के वरावर है', यही जानते हुए मेरे पिताजी ने भी छह वर्ष तक हमारा विवाह नहीं होने दिया था।

रामजी—और हां, स्वामीजी आपके परिचित लोगों से आपके भारत आने के वारे में भी पूछते रहते हैं।

जार्जिना—खूव याद दिलाया। श्रीमान् डीन स्टेनले ने दौड़धूप कर प्रिन्स आफ वेल्स की कुछ ही दिनों में होने वाली भारत की राजकीय यात्रा में उनके साथ जाने वाले दरवारियों की सूची में मेरे इन पतिदेव का नाम भी लिखवा दिया है। अव तो भारत के लिए प्रस्थान होने ही वाला है।

मूलर—भारत के लिए प्रस्थान की पूरी तैयारी कर ली है।

श्रीसेन तथा रामजी और श्याम जी—(सहर्ष) तव तो हम भी आपके साथी वन जाएंगे।

(डाकिया डाक लाकर देता है।)

जार्जिना—(उनमें से एक पत्र को देखकर) यह तो डीन महोदय का ही पत्र है। लगता है उन्होंने इन्हें भारत जाने के लिए तत्काल लन्दन वुलाया है।

मूलर—(सहर्ष) पढ़ो तो क्या लिखा है ।

जार्जिना—(पत्र पढ़कर, उदास होते हुए) अरे, यह तो मामला ही उलट गया ।

श्रीसेन—(चकित होकर) क्या हुआ ?

मूलर—(घबराते हुए पत्रपढ़ते हैं) अरे ! स्टेनले महोदय ने यह सूचना दी है कि प्रिन्स आफ वेल्स की भारत की राजकीय यात्रा के समय किसी विदेशी को इनके साथ नहीं भेजा जा सकता । बस, इसी बहाने से किसी अड़ंगेबाज ने मेरा नाम सूची से कटवा दिया है । मैं जानता हूं ऐसा तो हुआ ही करता है । क्योंकि—

कभी राष्ट्र, कभी वर्ग और कभी मतमतान्तर या जाति आदि की संकीर्णता के कारण मानव की उन्नति में सदा रुकावटें आती रहती हैं ॥२॥

यह बात दूसरी है कि यहां पधारने वाले आप जैसे महानुभावों, अपने मित्रों के साथ निरन्तर होने वाले पत्राचार तथा पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों आदि के द्वारा भारत मेरा भली-भांति जाना-पहचाना हुआ है । वहां जाकर भी मेरे भारत-विषयक ज्ञान में कोई खास बढ़ोत्तरी होने वाली नहीं थी और यहां रहते हुए भी श्रीकाशी विश्वनाथ के मन्दिर की आरती के घण्टे-घड़ियालों की ध्वनि भी सुनता ही रहता हूं । फिर भी—

यदि मुझे भारत जाने का अवसर मिल जाता तो उससे भारत और उसके साथ ही इग्लैंड को भी कुछ लाभ ही होता, विद्वानों को तो लाभ होता ही ॥३॥

सुता—(प्रवेशकर) पिताजी, भोजन का समय बीतता जा रहा है ।

जार्जिना—बेटी ! आज तो बातों में ऐसे लगे कि भोजन की भी याद नहीं रही । तो अब सब लोग भोजन के लिए पधारें ।

(सबका प्रस्थान)

तीसरा दृश्य

स्थान—आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के परिसर में मेक्समूलर का भवन।

(जार्जिना तथा अपने पुत्र और पुत्री के साथ मेक्समूलर का प्रवेश)

मूलर—भारत के अनेक महानुभाव यहां पधारकर हमें अनुगृहीत करते रहते हैं यह बड़े सौभाग्य की बात है। किन्तु आज तो अपने यहां महोत्सव ही होगा।

जार्जिना—आपके साथ रहते हुए मेरा तो एक-एक दिन उत्सव की भांति ही बीत रहा है।

मूलर—स्वामी विवेकानन्द जी मेरे निमन्त्रण को स्वीकार कर लन्दन से आज अपना घर पवित्र करने के लिए पधार रहे हैं।

जार्जिना—यह हम लोगों का अहोभाग्य है।

मूलर—(देखकर) लो स्वामीजी पधार भी गए। स्टर्डी महोदय भी उनके पीछे आ रहे हैं। तो आओ, उनकी अगवानी करें। (आगे जाकर)

परमहंस श्री रामकृष्णदेव के श्रेष्ठ शिष्य स्वामी विवेकानन्द जी आज मेरी कुटिया पर पधारे हैं। अब मैं कृतकृत्य हो गया हूं ।।४।।

जार्जिना—सारे विश्व को वेद और वेदान्त का सन्देश सुनाने वाले भारत के जंगम स्वरूप स्वामी विवेकानन्द जी को मैं प्रणाम करती हूं ।।५।।

विवेकानन्द—ॐ नमो नारायणाय। कल्याण हो। (जार्जिना को सम्बोधित करते हुए) लगता है आपने पिछले जन्म में बहुत बड़ा तप किया था।

जार्जिना—महात्माजी ! पिछले जन्म में ही क्यों इस जन्म में भी तो छह साल तक प्रतीक्षा के ताप में तपने के बाद ही……

मूलर— विवाह के द्वारा हम एक साथ हो पाए हैं, मैं वाक्य पूरा कर दूं। क्यों, ठीक है न !

(सब हंसते हैं)

विवेकानन्द—वेदज्ञवर ! मैं जानता हूं कि आपने जवानी में कदम रखते ही तेईसवें वर्ष में जिस सायणभाष्य-सहित ऋग्वेद को छपाना शुरू किया था, वह आपके उनचासवें वर्ष में जाकर पूरा हुआ।

मूलर—स्वामी जी ! अब मैं आपको यह भी बताना चाहता हूं कि अपनी आयु के

चौथे चरण में पहुंच जाने पर अब मुझमें काम करने की वैसी शक्ति नहीं रह पायी है। तो भी—

विजय नगर के महाराज ने सायणभाष्य-सहित ऋग्वेद का दूसरा संस्करण प्रकाशित करने के लिए बहुत बड़ा अनुदान दिया है ।।।६।।
इसलिए मैं सायणभाष्य को एक बार फिर सम्पादित और संशोधित कर बड़े आकार के चार खण्डों में ऋग्वेद को ऑक्सफोर्ड प्रेस से दुबारा छपवाने के काम में जुट गया हूं।

विवेकानन्द—पहले (चौदहवीं सदी में) विजय-नगर-साम्राज्य के यशस्वी सम्राट् कृष्णराज द्वितीय ने आचार्य सायण को ऋग्वेद का भाष्य लिखने के लिए प्रेरित किया था। और उसी विजय नगर के महाराज ने अब आपको सायणभाष्य को ही दुबारा सुन्दर और नए रूप में छपाने के लिए प्रेरित किया। यह भी एक संयोग और सुयोग ही है।

मूलर—और विजय नगर महाराज के इस अनुदान से यहां के लोगों ने जान लिया कि भारत के लोग केवल बातूनी ही नहीं, वे उदार और कर्मशूर भी हैं ।।७।।

स्टर्डी—सायणभाष्य-सहित ऋग्वेद का दूसरा संस्करण छपाने के लिए भारत के विजयनगराधीश ने धन लगाया, यह बात तो समझ में आती है। किन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने इसका पहला संस्करण छपाने की योजना क्यों स्वीकार कर ली? यह तो बताइये।

मूलर—ठीक पूछा। श्री बर्नूफ ने और मैंने भी सायणभाष्य छपाने के लिए कई स्थानों पर हाथ-पैर मारे। संस्कृत के महान् आचार्य बॉथलिंग्क ने लिखा कि मैं पिटसबर्ग अकादमी से इसे छपवाने को तैयार हूं, किन्तु इसके सम्पादक के रूप में तुम्हारे साथ मेरा नाम भी जायेगा। मुझे उनका यह प्रस्ताव मान्य नहीं हुआ। उसके बाद श्री बॉप्प ने लिखा कि मैं बर्लिन से इसे छपवा सकता हूं, किन्तु भाष्य का आकार तो बहुत बड़ा है। उसे कुछ संक्षिप्त करना होगा। मैंने उनकी यह बात भी नहीं मानी। उन्हीं दिनों इण्डिया हाउस में रखी हुई पाण्डुलिपियां पढ़ने के लिए मैं लन्दन आया। इग्लैण्ड में प्रशिया के राजदूत अद्भुत प्रभावशाली श्री बुन्शेन महोदय उन दिनों वहीं थे। मेरे पिताजी के मित्र होने के नाते वे मुझे भी जानते थे।

स्टर्डी—बहुत अच्छा।

मूलर—ऋग्वेद सायण-भाष्य के प्रकाशन की मेरी योजना सुन वे बहुत खुश हुए।

"कम्पनी के सिवा कोई और देश भारत के इस गौरव-ग्रन्थ को छाप डालेगा तो कम्पनी के लिए यह बड़ी लज्जा की बात होगी" यह कहकर उन्होंने कम्पनी के निदेशक मण्डल से मेरी भाष्य-प्रकाशन योजना स्वीकार करवा ली। और हां, इस लम्बे प्रकाशन कार्य में केवल दो बार एक-एक वर्ष की रुकावटें आई थीं।

स्टर्डी—वह व्यवधान क्या था ?

मूलर—पहले तो भारत में सैनिक विद्रोह के कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अधिकारी भारत से उस वर्ष विद्वानों से भाष्य की पाण्डुलिपियों की प्रतिलिपि करवा कर भेज नहीं पाए। और दूसरी बार जहाज के समुद्र में डूब जाने से उसमें लायी जा रही पाण्डुलिपियां भी नष्ट हो गयीं।

जार्जिना—इस प्रकार—

पच्चीस साल की लगन से ऋग्वेद और उसका सायण-भाष्य छप पाया था ॥८॥

स्टर्डी—आपकी यह वेद की कहानी जितनी मनोहर है, उतनी ही साहस भरी भी।

विवेकानन्द—बिल्कुल ठीक ! यह वेद कथा बड़ी ही अद्भुत, उतनी ही सरस और सर्वथा नयी है। वेद प्रकाशन का यह इतिहास सुनते-सुनते रोमाञ्च हो आता है। क्योंकि वेद कथा या वेद-चर्चा अथवा वेदपाठ सुनकर मैं पुलकित हो उठता हूं ॥९॥

जार्जिना—मेरे पतिदेव ने तो ऋग्वेद के छहों खण्ड लोकमान्य तिलक को भी भेंट-स्वरूप भेजे थे।

मूलर—तिलक जी की विद्वत्ता भी अपार है। ओरायन मृगशीर्ष नामक उनकी वेदकाल-निर्णय सम्बन्धी छोटी-सी पुस्तिका को पढ़कर मैं चकित रह गया।

जार्जिना— इन्होंने तो पत्र-पत्रिकाओं में लेखों और पत्रों के द्वारा इल्बर्ट बिल का भी भरपूर समर्थन किया था। भले ही अन्य सभी अंग्रेजों ने उसका घोर विरोध ही क्यों न किया हो।

मूलर—इस विधेयक के द्वारा भारतीय न्यायाधीशों को अंग्रेजों के मुकदमें सुनने का अधिकार मिल गया। क्योंकि मैं मानता हूं भारत के न्यायाधीश सर्वथा योग्य और निष्पक्ष होते हैं।

विवेकानन्द—आपकी 'इण्डिया ह्वाट् इट् कैन टीच अस' नामक पुस्तक तो आद्यन्त भारतभक्ति की परिचायिका है। अब आप भारत कब आ रहे हैं?

मूलर—स्वामी जी, इस बारे में तो मैं यही कहना चाहूंगा—

वाराणसी में वास, गंगा में गोते लगाना और वेदवेदान्त का स्वाध्याय; ये तीनों मुझे बहुत प्रिय हैं ॥१०॥

और हां (गद्गद् होकर)—

यदि मैं भारत पहुंच गया तो फिर वहां से लौटूंगा नहीं। आप लोगों को वहीं मेरा दाह संस्कार करना होगा ॥११॥

स्वामी जी, मैं अपनी कुछ नयी पुस्तकें लेकर आता हूं। तब तक आप ये पुस्तकें देखिये (मेक्समूलर पुस्तकें लेने जाते हैं।)

स्टर्डी—स्वामी जी! ये तो सब मेक्समूलर की लिखी या सम्पादित पुस्तकें हैं। देखिए ये हैं—ऋग्वेद के छह खण्ड, और यह रहा ऋग्वेद के ही दूसरे संस्करण का पहला खण्ड। (अनेक पुस्तकें दिखाते हैं)

विवेकानन्द—मेक्समूलर का तो सारा जीवन ही संस्कृत प्रेम और भारत-भक्ति का परिचायक है। जैसा भारत प्रेम इनमें है, काश! हमें उसका सौवां हिस्सा भी मिल पाता। अपरा विद्या से परा विद्या की ओर अग्रसर होने वाले उपनिषदों के गूढ़ तत्त्व का साक्षात्कार कर लेने वाले, वेद के इस विद्वान् के यहां आकर मुझे लगा कि आज मैं वसिष्ठ और अरुन्धती, के आश्रम में आ पहुंचा हूं।

स्टर्डी—मुझे भी ऐसा ही लग रहा है।

विवेकानन्द—स्टर्डी महोदय आपने कुछ ध्यान दिया?

भारतागमन की चर्चा आने पर मेक्समूलर की आंखें भर आई थीं। निश्चय ही पिछले जन्म में ये कोई पण्डित रहे होंगे। जैसा कि कालिदास ने कहा है—

जन्मान्तरों के संस्कार सदा बने रहते हैं, इसलिए मनुष्य कभी किसी विशेष प्रसंग के आने पर भाव-विह्वल हो उठता है।

(मेक्समूलर पुस्तकें लेकर आते हैं।)

मूलर—अहा कालिदास······(रम्याणि वीक्ष्य···इत्यादि श्लोक पढ़ते हैं और स्टर्डी भी उसी श्लोक को दुहराते हैं।)

जार्जिना—(स्टर्डी की ओर देखकर) तो क्या आप भी संस्कृत जानते हैं।

स्टर्डी—क्यों नहीं। मैंने तो भारत में ही संस्कृत पढ़ ली थी और अब स्वामी जी के सान्निध्य में तो उसका अभ्यास खूब हो गया है।

विवेकानन्द—मान्यवर! आजकल सारे संसार में मेरे गुरु श्रीरामकृष्ण परमहंसजी की पूजा हो रही है।

मूलर—यह तो ठीक ही है, क्योंकि—

धर्म के जीते जागते रूप परमहंस महात्मा श्रीरामकृष्ण के सिवा इस समय इस संसार में और कौन है, जिसकी पूजा की जा सके ॥१२॥

स्वामी जी हां, यह मेरी बिल्कुल नयी रचना है।

विवेकानन्द—(देखकर) यह तो मेरे गुरुदेव परमहंस श्रीरामकृष्ण महाराज की आपकी लिखी जीवनी है। इसे पाकर तो मैं गद्‌गद हो गया। इसके लिए मैं भला आपका क्या उपकार कर सकता हूं।

मूलर—स्वामी जी, जर्मनी के महामहिम सम्राट् और महामान्या सम्राज्ञी विक्टोरिया से मुझे सर्वोच्च अलंकरण मिल चुके हैं। मैं प्रीवी कौन्सिल का सदस्य भी हूं। यश और सम्मान भी मेरा है ही, सबसे बढ़कर आप जैसे महात्माओं और मित्रों का पुनीत प्रेम भी मुझे प्राप्त है। सभी कुछ तो भगवान् की कृपा से मिला हुआ है। फिर भी वाग्देवता की कृपा हो तो कविकुल-गुरु कालिदास की भावना के अनुसार मैं चाहूंगा कि—

(भरत-वाक्य)

इस भूमण्डल पर और विशेषतः इस देश इंग्लैण्ड में भारत भूमि का मान बढ़े और वेदवाणी की महिमा भी सदा बढ़ती रहे। अपने गुणगणों के गौरव से सर्वत्र सम्मानित और सारे विश्व की कल्याण-कामना करने वाले विद्वान् लोग सदा सब प्रकार से सुखी और प्रसन्न रहें।

(पर्दा गिरता है।)

तीसरा अंक समाप्त

इसके साथ ही 'मोक्षमूलर वैदुष्यम्' नाटक समाप्त।

परिशिष्ट

B. G. TILAK & KIELHARN SPAKE THUS—

The death of Prof. Max Mueller has deprived England of one of her greatest scholar and India of one of her warmest friends abroad.

This general benefactor of the world had claimed India specially as his own and no ordinary reasons would be enough to wholly account for the love he bore for this country. A great Sanskrit poet has said that "some mysterious cause always binds together certain things in this world; and love and sympathy are never influenced by mere external circumstances." This proposition was never so true as in the case of Max Mueller, who though he had never even so much as seen India, still regarded this country as his own motherland.

We all know how he was delighted to call himself *Moksha Mulara Bhatta* a Sanskritised name, in preference to his Christian name Max Mueller. And we also know that those among us who have any idea of his love for and deep studies in Sanskrit literature always liked to indulge in thinking of him as an old reverend Rishi.

It is suggested by certain Anglo-Indian cynics that a visit to India would have disturbed the comfortable conception of Indian Society, which the learned Sanskritist 'had evolved in the placid processes of philosophical evolution', and that he would then have realised how the India of the classics is quite different from India as the Anglo-Indians know and the statesmen and administrators have to deal with. We all know what this means. But we think it to be a presumption on the part of these cynics to suppose that Max Mueller was ignorant of the difference between the real condition of India and the condition as depicted by its classics. For the Professor knew for a fact such difference with regard to England and other Christian countries,

and there is ample reason to suppose that his love for India was not the result of self-deception notwith-standing his cognisance of such difference with regard to this country. In his preface to his *Chips from a German Workshop*, Max Mueller tells us that he would "never forget that deep despondency of a Hindu convert, a real martyr to his faith, who had Pictured to himself from the pages of the New Testament what a Christian country must be, and who, when he came to Europe, found everything so different from what he had imagined in his lonely meditations at Benares." This completely refutes the theory that Max Mueller's love for India and her people was based on ignorance of human nature. The Professor was by no means the first among Europeans to disclose elements in the Sanskrit literature and the Hindu religion which entitled the Hindus to appreciation and admiration by foreigners. The work was begun by others before him nearly a century earlier; and the names of Wilkins, Jones, Humboldt, Herder, Schlegel, Goethe, Burnouf and others are not unknown to us. But it was reserved to him to carry the work much further, make it thorough, and make it permanent. To him more than to any other orientalist, India owes that while the regions of her classics were succesfully explored to the enlightenment of the Europeans, her good name and her real merits were for ever installed on an intellectual eminence which was a surprise and wonder to the Christian countries of the West. While enriching the English literature with some of the best ideas from the Sanskrit literature both in religious philosophy as well as the philosophy of religion, Max Mueller earned for India esteem, admiration and regard which alone are the redeeming features of the present condition of this unfortunate country. He who bestow on this country charity or a political privilege may deserve our thanks. But he, who, like Max Mueller, spreads to the wondering eyes of the world the beauties of the Hindu religion and literature, and who establishes the superiority of Hindu philosophy, renders us a service which cannot be too highly valued in these days.

Personally Max Mueller was a noble example of learning benevolence and cosmopolitan spirit all combined in one.

It is true that being born in Germany, he adopted England as his second home; and sailed through all his life in

the interest of India. But all this is very natural in one who was so large-minded and Catholic as to cheerfully recognise that the Aryans were the true ancestors of the Teutonic race and that the Veda is the oldest book in which the first beginnings of the English language and all that is embodied in the language are to be found. Being a Christian he faithfully stuck to that religion throughout his life. But as no one could be more Christian in spirit than he, so also no one was more alive to the defects of Christianity than he was. "To each individual," he has said, "his own religion, if he really believes in it, is something quite insepa-rable from himself—something unique that cannot be compared to anything else or replaced by anything else. Our own religion is in that respect something like our own languages. In its essence and in its relation to ourselves it stands alone and admits of no peer or rival."

Fram The Mahratta, *Sunday, Navember 4, 1900*

To-day, after a lapse of more than fifty years, we can only realise with an effort the great difficulties which Max Mueller had to overcome, before he could publish the first volume of his edition of the *Rigveda*, a volume which was exclusively his own work. An edition of the text only of the Vedic Hymns would have been useful, and comparatively easy, for this text has been handed down to us for more than two thousand years unaltered. Max Mueller determined from the first, and this will always be his great glory, to prepare a critical edition of the Indian Commentary, not of small portions only, chosen at will, but in its entirety. People have disputed warmly as to the value of the native Commentary. But in any case we *must* know the so-called traditional explanation of the Vedic text. When Max Mueller began his task there was no perfect lexicon, still less editions of the innumerable texts incessantly quoted by the commentator. Now, we possess, besides the great St. Petersburg Dictionary, complete texts of the extensive gramma-tical literature, and yet every one would confess that it is even

now by no means easy to understand Sayana's Commentary in all parts. Max Mueller had these works only in more or less imperfect manuscripts, he had himself to construct their texts, and to provide at least the most important with indices, before he could even enter on his own special work. It is every where acknowledged that he accomplished this task brilliantly. Any one who watched him, as I did, labouring at the Vedas, knows how conscientiously he worked, and that he was not the man to print a single line of the Commentary, until he had thoroughly conquered its meaning. Did we possess but the first volume of his *Rigveda*, we must place Mueller amongst the first Sanskrit scholars of the last century.

I must mention also two epoch-making works which Max Mueller brought out during the publication of his *Rigveda* : His careful edition of the *Rigveda Pratishakhya*, and his *History of Ancient Sanskrit Literature*, which is not even now superseded by any other work. The enormous amount of this literature, the inaccessibility of its monuments, and the circumstance that they are so difficult to understand, required long-continued and indefatigable study, united to most uncommon sagacity. We all owe Max Mueller a deep debt of gratitude, not only for all he himself brought to light, but for the paths whic h he opened up for future workers.

Extracts from Dr. Kielhorn's Paper on Max Mueller as quoted in The Life and Letters of Max Mueller, *Vol. II, p. 433*

नाटककार की पूर्व प्रकाशित अन्य रचनाएं

१. हमारा हिन्दी साहित्य और भाषा-परिवार—(हिन्दी साहित्य का इतिहास) तृतीय परिवर्धित संस्करण छप रहा है। मूल्य ३५/-

२. हिन्दी कवि सर्वस्व—(हिन्दी के पुराने कवियों का विवेचनात्मक अध्ययन—श्री रामधारीसिंह दिनकर की भूमिका सहित), तृतीय संस्करण छप रहा है। मूल्य १२/-

३. वीसलदेवरासो—(नरपतिनल्ह-कृत राजस्थानी का प्रथम काव्य) संपादन। मूल्य ८/-

४. द्वापर—एक अध्ययन। मूल्य १२/-

६. दिव्य-जीवन—जैनाचार्य पूज्य श्री काशीरामजी महाराज का जीवन-चरित। मूल्य ५.००

७. छन्दोऽलङ्कार दीपिका—(नवीन परिवर्धित सस्करण छप रहा है)।

८. आदर्श संस्कृत-व्याकरण—(परिवर्धित नवीन संस्करण छप रहा है।)

९. प्राचीन भारतवर्ष ,,

१०. आदर्श निबन्ध निकुञ्ज ,,

११. विचार और विश्लेषण—(निबन्ध संकलन) ,,

१२. महाभारत—मूल व नीलकण्ठी टीका के हिन्दी अनुवाद के साथ प्रथम खण्ड आदिपर्व के १४५ अध्याय तक। मूल्य ४/-

१३. नित्यकर्म-प्रकाश

डा. त्रिवेदी की शीघ्र प्रकाशित होने वाली रचनाएं

१. संस्कृतं यूरोपीया भाषाश्च

२. संस्कृतम् इरानीया भाषाश्च

४. शाहनामा—(महाकवि फिरदौसी-कृत ऐतिहासिक महाकाव्य)
फ़ारसी भाषा व लिपि तथा देवनागरी में मूल-पाठ, भाषानुवाद व फ़ारसी शब्दों के संस्कृत-प्रतिरूपों के साथ)।

५. गुलिस्तान—(महात्मा शेखसादी-कृत)। ,, ,,

६. रूबाइयाते उमरखय्याम— ,, ,,

७. संस्कार-प्रकाश

८. कालिदास के काव्यों में भौगोलिक तत्त्व (शोध-प्रबन्ध)

९. फ़ारसी स्वयं-शिक्षक—(संस्कृत-हिन्दी के साथ तुलनात्मक-पद्धति पर)

१०. दयानन्ददिग्विजयम् नाटकम्—(भाषानुवाद-सहित)

११. अरविन्दसौरभम् ,, ,,

१४. गान्धिगौरवम् ,, ,,

१५. श्री साईचरितम् ,, ,,

१६. विवेकानन्दवैभवम् ,, ,,

१७. विक्रमादित्यविजयम् ,, ,,

१८. विविधा पत्र-पत्रिकाओं में पूर्व-प्रकाशित सामाजिक सांस्कृतिक, धार्मिक ऐतिहासिक आदि विविध-विषयों से सम्बद्ध लेखों का